प्रकाश

[A bull in a China-Shop]

गोविन्ददास

१९५९

प्रकाशक

भारतीय विश्व-प्रकाशन

फव्वारा—दिल्ली

मुख्य वितरक

भारती साहित्य मन्दिर

(एस० चन्द एण्ड कम्पनी से सम्बद्ध)

आसफअली रोड — नई दिल्ली

फव्वारा — दिल्ली

माई हीरा गेट — जालन्धर

लाल बाग — लखनऊ

मूल्य २·५०

मुद्रक . डिलाइट प्रेस, चूड़ीवालान, दिल्ली-६

निवेदन

यह नाटक मैंने तारीख २५ जून १९३० को दमोह-जेल में लिखना आरम्भ किया और दस दिनो में यह समाप्त हो गया। यद्यपि इसके लिखने मे मुझे केवल दस दिनो का समय लगा तथापि इनके कथानक और पात्रो को मैं वर्षों से सोचता रहा हूँ। तीसरी बार जेल से निकलने के पश्चात् इस नाटक मे मैंने कुछ परिवर्तन किये जिससे इसका समय सन् १९३४ रहे, सन् १९३० नही, क्योंकि यह प्रथम बार सन् १९३५ मे प्रकाशित हुआ।

मैं स्वतन्त्रता के संग्रामो मे पाँच वार जेल गया और लगभग आठ वर्ष जेलों में रहा। इन जेल-यात्राओ मे सतत पढना-लिखना चलता रहा। सन् १९३० से जो लेखन आरम्भ हुआ उसमे यह पहला नाटक है। इसके पूर्व मैंने केवल दो नाटक लिखे थे—एक सन् १९१९ मे सामाजिक नाटक 'विश्व-प्रेम' और दूसरा सन १९२३ मे ऐतिहासिक नाटक 'विश्वासघात'।

यह नाटक सामाजिक है। वर्तमान समाज का राजनीति से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है, इसलिए इसमे कुछ राजनैतिक बातो का भी समावेश हुआ है, अत इसे अग्रेजी में 'सोशो-पुलेटिकल-ड्रामा' कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। इसकी हस्तलिखित प्रति जब मैंने कुछ मित्रो को सुनाई तथा पढने को दी तब उन्होंने कुछ पात्रो के सम्बन्ध मे मुझसे कहा कि अमुक-अमुक पुरुषो और स्त्रियो को सम्मुख रख अमुक-अमुक पात्र की सृष्टि की गयी है। बहुत सम्भव है कतिपय पाठक भी इसी प्रकार की कल्पना करें, पर मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि किसी भी व्यक्ति-विशेष को लेकर किसी पात्र की सृष्टि नही की गयी है। नाटक का वर्तमान सामाजिक स्थिति से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण कुछ पाठको को इस प्रकार का भ्रम हो सकता है।

इस नाटक में पद्य बिलकुल ही नहीं है, क्योकि इसमे मुझे उनकी थोडी भी आवश्यकता नही जान पडी।

—गोविन्ददास

नाटक के मुख्य पात्र, स्थान

पुरुष—

राजा अजयसिंह	एक जमींदार
सर भगवानदास	एक व्यापारी
दामोदरदास गुप्ता	: सर भगवानदास का पुत्र, कौंसिल का सदस्य
माननीय धनपाल	मिनिस्टर
पंडित विश्वनाथ	: हिन्दू-सभा का सभापति, म्यूनिस्पैल्टी का प्रेसीडेण्ट कौंसिल का सदस्य
मौलाना शहीदबख्श	: मुस्लिम-लीग का सदर, म्यूनिस्पैल्टी का वाइस प्रेसीडेन्ट, कौंसिल का सदस्य
कन्हैयालाल वर्मा	'हिन्दुस्थान'-पत्र का सम्पादक
डाक्टर नेस्टफील्ड	क्रिश्चियन बैरिस्टर, बार-एसोसिएशन का प्रेसीडेण्ट, पब्लिक प्रॉसीक्यूटर
प्रकाशचन्द्र	गाँव से नगर मे आया हुआ एक युवक

स्त्री—

रानी कल्याणी	अजयसिंह की पत्नी
लेडी लक्ष्मी	भगवानदास की पत्नी
रुक्मिणी	दामोदरदास की पत्नी
मनोरमा	दामोदरदास की बहन
सुशीला	मनोरमा की सहेली
मिस थेरिजा	नेस्टफील्ड की भतीजी
तारा	प्रकाशचन्द्र की माता

स्थान—एक नगर

उपक्रम

स्थान एक दूकान

समय तीसरा पहर

[छोटी-सी दूकान है। तीन ओर दीवालें दिखती हैं। दो ओर की दीवालों के सिरो पर थोडा-थोड़ा स्थान आने-जाने के लिए खुला है। तीनो दीवालो का शेष स्थान बिना दरवाजों की अलमारियो से भरा है, जिनमें चीनी-मिट्टी के बर्तन सजे हैं। दूकान के बीच में, एक छोटी-सी स्टूल पर, एक वृद्ध मनुष्य बैठा है। उसके सिर पर छोटे-छोटे सफेद बाल और लबी सफेद दाढी है। वह एक कुरता तथा पायजामा पहने है, परन्तु सिर नगा है।]

वृद्ध : देखो, देखो, मिट्टी के हैं, तो भी कैसे बर्तन हैं!
चमकीला है पॉलिश इनका, सोने से भी अच्छे हैं!

[दाहिनी ओर से एक साँड आता है। उसे देखते ही वृद्ध घबड़ाकर खडा हो जाता है।]

वृद्ध : (साँड को बर्तनों की ओर बढते देख, चिल्लाकर)
अरे, अरे, दौडो, दौडो, खरीदार की जगह दूकान मे साँड आ गया, साँड आ गया!

यवनिका

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान राजा अजयसिंह का उद्यान

समय संध्या

[उद्यान में दूब का एक मैदान सुन्दरता से प्रीति-भोज (गार्डन पार्टी) के लिए सजाया गया है। चारों ओर रंग-बिरंगे काग़ज का बंदनवार बँधा है, उसमें स्थान-स्थान पर चीनाई लालटेनें लटक रही हैं, जिनमें मोमबत्तियाँ जल रही हैं। वृक्षों पर बिजली की रंग-बिरंगी बत्तियाँ हैं। मैदान के बीच में कुछ दूरी पर, एक बड़ी-सी टेबिल रखी है, जिस पर सफ़ेद कपड़ा बिछा है और उस पर अँगरेज़ी केक, चाकलेट आदि कई प्रकार की मिठाइयाँ एवं फल चीनी की रकाबियो में सजे हैं। बीच में फूलदानों में फूल सजे हैं। टेबिल के चारो ओर रेशमी गद्दीदार सुन्दर कुर्सियाँ हैं। तीन कुर्सियों पर दो मेमें और एक अँगरेज बैठे हुए बातें कर रहे हैं, जो बीच-बीच में खाते जाते हैं, परन्तु दूरी पर होने के कारण उनकी बात-चीत सुनायी नहीं देती। दाहिनी ओर कई छोटी-छोटी टेबिलें रखी हैं। ये भी कपड़े से ढँकी हैं और इन पर भी मिठाइयाँ और फल तथा फूलदान सजे हैं। एक-एक टेबिल के चारो ओर

चार-चार, बेंत से बुनी हुई, हाथदार कुर्सियाँ रखी हैं। कुछ टेबिलो की कुर्सियाँ खाली हैं। एक टेबिल के चारो ओर धनपाल, दामोदरदास गुप्ता, रुक्मिणी और थेरिजा एव दूसरी टेबिल की दो कुर्सियो पर मनोरमा और सुशीला बैठी हैं। धनपाल गेहुँएँ रग का, लगभग चालीस वर्ष का, साधारणतया ऊँचा मनुष्य है। नोक कटी हुई (बटर-फ़्लाई) मूँछें हैं, जो सफेद हो चली हैं। कपड़े अँगरेजी ढँग के हैं। संध्या के पहनने का टोप कुर्सी के नीचे रखा हुआ है। दामोदरदास गुप्ता साँवले रग का, लगभग पैंतीस वर्ष का ठिगना और दुबला आदमी है। मूँछें मुड़ी (क्लीन-शेव्ड) हैं। काले मोटे फ्रेम का चश्मा लगाये है। इसके वस्त्र भी धनपाल के सदृश हैं और इसका टोप भी कुर्सी के नीचे रखा हुआ है। रुक्मिणी गोरे रंग की लम्बी, लगभग तीस वर्ष की परम सुन्दर रमणी है। बाल आधुनिक ढँग से कटे (बाब्ड) हैं। गुलाबी रग की, जरी के काम की बनारसी साडी और उसी रंग का बनारसी शलूका पहने है। साडी में पिन लगी है। हाथो में काँच की दो-दो और मोती की एक-एक चूडियाँ हैं। बाँयें हाथ में काले फीते से सोने की छोटी-सी घड़ी बँधी है। गले में हीरे का हार और कान में हीरे के इयरिंग हैं। सोने के फ़्रेम का चश्मा लगाये है। नाक में और पैरों में कोई आभूषण नहीं है। मोजे और ऊँची एड़ी के बनारसी जरी के सुनहरी जूते हैं। थेरिजा गेहुँएँ रंग की, ठिगनी, गठी हुई, लगभग पच्चीस वर्ष की साधारण सुन्दर स्त्री है। अँगरेजी कपडे पहने है। बाल अँगरेजी ढँग

से कटे हैं। सिर पर छोटी चटाई की टोपी है। आसमानी रंग का छोटा लहँगा (स्कर्ट) है, जो ऊँचा है और उसी रंग का शलूका (ब्लाउज़) है जिसके ऊपर का भाग बहुत नीचे तक खुला हुआ है। जाँघों तक गुलाबी रंग के मोजे (स्टाकिंग्स) और ऊँची एड़ी के बादामी रंग के जूते हैं। मनोरमा, गौर वर्ण की, लगभग अठारह वर्ष की, दुबली, ठिगनी और सुन्दर युवती है। बैंगनी रंग की खादी की फूल-दार छपी हुई साड़ी और वैसा ही शलूका पहने है। बाल लम्बे हैं, जो हिन्दुस्थानी ढंग से सँवारे हुए हैं। मस्तक पर इंगुर की टिकली है। गले में मोती की कण्ठी, कान में हीरे के इयरिंग, नाक में लौंग, हाथों में काँच की दो-दो और मोती की एक-एक चूड़ी है। पैरों में मोजे और स्लीपर हैं। सुशीला गेहुँएँ रंग की, भरे हुए शरीर की ठिगनी, साधारण तथा सुन्दर युवती है। अवस्था और वेश-भूषा मनोरमा के सदृश है, पर आभूषण रत्नजटित न होकर सोने के हैं। ये सभी बातें कर रहे हैं और बीच-बीच में खाते भी जाते हैं। इनकी बातचीत सुनायी देती है। बाँयीं ओर इसी प्रकार की कई टेबिलें हैं, जिनके चारों ओर चार-चार कुर्सियाँ है, पर इन टेबिलों पर कपड़ा नहीं है, कुर्सियाँ भी लोहे की हैं। इन टेबिलों पर भी मिठाइयाँ और फल सजे हैं, पर फूलदान नहीं हैं। कुछ कुर्सियाँ खाली हैं और कुछ पर साधारण कोटि के मनुष्य साधारण वेश-भूषा में दिखायी देते हैं। ये खाने में तल्लीन हैं और कोई किसी से नहीं बोलता। अजयसिंह और नेस्टफ़ील्ड दाहिनी ओर से मेहमानों का स्वागत कर रहे हैं।

कुछ को दाहिनी ओर, कुछ को बाँयीं ओर भेजते हैं। जब कुछ देर तक कोई नही आता तब ये लोग दाहिनी ओर की कुर्सियो पर बैठ जाते है। अजयसिंह गोरे रंग का, लगभग साठ वर्ष का दुबला-पतला वृद्ध मनुष्य है। मुख से जान पडता है कि कभी सुन्दर रहा होगा। छोटी-छोटी सफेद मूँछें हैं। काली रेशमी शेरवानी और चूड़ीदार सफेद सूती पायजामा पहने तथा सिर पर राजपूताने का गहरा लहरिये रंग का साफा बाँधे है। शेर-वानी में हीरे के बटन, बाँयीं ओर हीरे का स्टार और नीचे के जेब में घडी की, हीरे की, डबल चेन लगी हुई है। साफे में हीरे की कलगी है, जिसमें सफेद पर फहरा रहा है। नेस्ट-फील्ड गेहुँएँ रग का, लगभग पचास वर्ष का मोटा और ठिगना आदमी है। बड़ी-बड़ी लाल रग की मुँछें हैं, जो रोग़न (पोमेड) लगाकर बत्तीदार बनायी गयी है। मूँह में लम्बा सिगार है। लम्बा, अँगरेजी काला कोट (फ्रॉक कोट) और धारीदार पतलून तथा ऊँचा अँगरेजी टोप (टॉप हैट) पहने है। वास्कट के नीचे, नेकटाई के निकट सफेद कपड़े की पट्टियाँ (व्हाइट-लाइनर) और काले-जूतो पर सफेद रंग के चमड़े (स्पैट्स) लगे है। एक आँख में आई-ग्लास है, जो काले फीते से बँधा है। यह फीता गले में पडा है। आई-ग्लास कई बार आँख से खिसक आता है और इसे नेस्टफील्ड फिर से लगाता जाता है। खानसामे सफेद वर्दी लगाये हुए केक, चाय, शराब, सिगरेट, सिगार आदि बडी-बडी रकाबियो (ट्रे) में लिये हुए घूम रहे हैं।]

दामोदरदास : वही हुआ न, मिस्टर धनपाल, जो मैं हमेशा कहता

था। नॉन-को-ऑपरेशन के समान ही सिविल-डिसओबीडियन्स भी फेल हो गया। (अंगूर के गुच्छे में से एक अंगूर तोड़कर खाते हुए) उसी कॉंग्रेस की आज क्या हालत है जो सन् १९३२ तक इस देश की सर्वेसर्वा थी।

धनपाल : (चाकलेट उठाकर खाते हुए) मै तो इस सम्बन्ध मे हमेशा तुमसे सहमत होता रहा हूँ, मिस्टर गुप्ता।

दामोदरदास : और देख लेना कि आखिर मेरा यह कथन भी सत्य होकर रहेगा कि इस देश में भी दुनिया के अन्य देशो के समान सबसे अधिक प्रधानता आर्थिक प्रश्न की रह जाने वाली है। (चाकू से अमरूद काटता है।)

रुक्मिणी : यह तो ठीक है, पर आर्थिक प्रश्न की अपेक्षा मेरी दृष्टि से तो इस देश का सामाजिक प्रश्न ज्यादा जरूरी है। (छुरी उठाकर) स्त्रियो का प्रश्न क्या साधारण प्रश्न है ? उनमे शिक्षा नही, सामाजिक जीवन नही, कुछ भी नही है। वे जन्म भर परदे में सडायी जाती हैं। पुरुष जिस रास्ते से उन्हे ले जायँ वही उनका मार्ग है। (केक काटते हुए) क्या उन्हे कोई भी स्वतत्रता है ? माँ-बाप जिस उम्र में, जिसके साथ चाहे, विवाह कर दे। यदि दुर्भाग्य से बाल्यावस्था मे वैधव्य आ गया, तो जन्म भर दु.ख ही दु ख। अगर कोई विधवा न हुई और कही उसको बुरा पति मिल गया तो भी क्लेश ही क्लेश। डाइवोर्स तक नही हो सकता। (कॉंटे से केक के टुकड़े को उठाते हुए) मैं तो कहती हूँ कि जब तक इस देश की

स्त्रियो का सवाल हल नही होता, तब तक इस देश की उन्नति का नाम लेना फिजूल है। (केक खाती है।)

दामोदरदास लीजिए, फिर वही राग छिड गया, मिस्टर धनपाल। (रकाबी में शैम्पीन का ग्लास लिये हुए खानसामा आता है। दामोदरदास एक ग्लास उठाता है।) इस वार जव से हम लोग विलायत से लौटे हैं तब से मेरी तो इन्होने आफत कर डाली है। (शैम्पीन पीते हुए) मेरे, पैंतीस वर्ष तक की उम्र मे कम्पलसरी-विडो-रीमैरिज विल और डाइवोर्स-विल, जो कौंसिल मे पेश हैं, वे इन्ही की कृपा के फल हैं। भूल गया, कृपा के क्या, कर्टेन-लेक्चर्स के फल हैं। (हँसता है।)

धनपाल (इसने भी शैम्पीन का दूसरा ग्लास उठा लिया है, उसे पीते और सिर हिलाते हुए) वेल, शी इज एब्सोल्यूट्ली राइट। विना समाज-सुधार के इस देश का कभी कल्याण नही हो सकता।

मनोरमा परन्तु, भाई साहव, इन विलो से क्या समाज का सच्चा हित हो जायगा ? (सन्तरा छीलते हुए) मेरी तो राय है कि कानून-द्वारा समाज-सुधार करना ही ठीक सिद्धान्त नही है। समाज-सुधार राजकीय शक्ति की अपेक्षा आन्तरिक परिवर्तन द्वारा ही करने का प्रयत्न अच्छा है और वही स्थायी भी रह सकता है। मैं तो । (सन्तरा खाती है।)

दामोदरदास (कुछ रुखाई से शैम्पीन पीते-पीते) तुमको अभी इन सव विपयो पर विचार ही नही करना चाहिए,

मनोरमा, तुम्हारा काम अभी पढना है। (खाँसता है।)

थेरिजा : (इसने भी शैम्पीन का एक ग्लास उठा लिया है, उसे पीते-पीते) और एज्यूकेशन के बाद मिस गुप्ता खुद मान लेगी कि कानून के सिवा ऐसे रिफार्मस् करने का और कोई रास्ता ही नही है। मैं तो कहूँगी कि अगर मिस्टर गुप्ता के बिल कानून बन जायँ और मिसेज गुप्ता के मुआफिक सौ लेडीज भी इस मुल्क मे हो जायँ तो आज के सब पुलेटिकिल लीडर्स से ज्यादा इस मुल्क की बेहतरी हो सकती है।

दामोदरदास : (मुँह बिचकाकर) ओह! डोन्ट टॉक ऑफ पुलेटिकिल लीडर्स, मिस नेस्टफील्ड, उनमे क्या रखा है? गाधी का नॉन-को-ऑपरेशन और सिविल-डिसओबीडियन्स फेल हो गया, स्वराजिस्ट के ऑब्स्ट्रक्सन से कुछ न हुआ और रिसपासविस्ट या माडरेट्स से कभी कुछ होनेवाला है? (खाली कर ग्लास टेबिल पर रख देता है।)

धनपाल . (सिर हिलाते और पीते हुए) डेअर आइ डोन्ट एग्री, मिस्टर गुप्ता। जब इस देश मे कुछ होगा, तब (ग्लास टेबिल पर रखते हुए) हमारी एवोल्यूशन और कॉस्टीट्यूशनल थियोरी से ही।

दामोदरदास . उसी थियोरी से न, जिसके पास प्रेयर, पिटिशन और प्रोटेस्ट केवल ये तीन शस्त्र हैं? राम-राम कीजिए। अजी जनाब, यदि एक ओर गाधी का डायरेक्ट एक्शन फेल हुआ है, तो दूसरी ओर आपका कॉस्टीट्यूशनल्इज्मि भी गड़ चुका है। जब भी इस देश मे कुछ होगा तब हम

फाइनेन्सर्स से। अँगरेज लोगो से आप आर्थिक कुंजी अपने हाथ मे ले लीजिए, ये आप-से-आप इस देश से चले जायँगे। (सिगरेट जलाते हुए) इण्डियन-जाइन्ट-स्टॉक कम्पनियो से सारे देश मे उद्योग-धन्धे फैला दीजिए, विलायती कम्पनियो के हाथ से व्यापार छीन लीजिए, बस समाप्त, स्वराज्य मिल गया।

थेरिजा : (शैम्पीन का ग्लास खाली कर टेबिल पर रखते हुए) पर, मिसेज गुप्ता के मुआफिक सोशल रिफार्मस् के बिना स्वराज्य फिजूल की चीज होगी।

दामोदरदास (मुसकराकर) हाँ, हाँ, यह मैं भी मानता हूँ। मिस्टर धनपाल, आप अपना ही उदाहरण क्यो नही लेते ? जब से आप एग्रीकल्चर और इन्डस्ट्री के मिनिस्टर हुए हैं और जब से मैंने अपनी इरीगेशन-स्कीम सरकार के सामने रखी है, तब से ये लोग कैसे घबडा गये हैं ? (जोर से धुआँ खींचकर छोड़ते हुए) सबसे बडा डर तो इन्हे यह लग रहा है कि इतनी बडी स्कीम का ठेका मिनिस्टर किसी हिन्दोस्तानी कम्पनी को न दे दे।

[विश्वनाथ, शहीदबख्श और भगवानदास का प्रवेश। अजयसिंह और नेस्टफील्ड इनका स्वागत कर इन्हें दाहिनी ओर भेजते हैं। धनपाल, दामोदरदास, रुक्मिणी, थेरिजा, मनोरमा और सुशीला खड़े हो जाते हैं, कुछ इन लोगों से हाथ मिलाते हैं। ये लोग पास की कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। सबो में बातें आरम्भ होती हैं। शहीदबख्श खाना भी आरम्भ करता है, परन्तु विश्वनाथ और भगवानदास नहीं खाते।

विश्वनाथ लगभग पचपन वर्ष का, दुबला-पतला, ठिगना, गेहुँएँ रंग का मनुष्य है। सफ़ेद मूँछें है, बालाबरदार सफ़ेद अँगरखा और सादा, सफ़ेद पायजामा पहने है। गले में सफेद दुपट्टा है और सिर पर उसी रंग का साफा। सब कपड़े खादी के हैं। सादे हिन्दुस्थानी जूते हैं। मस्तक पर सफेद चन्दन की टिकली है। शहीदबख़्श लगभग चालीस वर्ष का साँवला, ऊँचा-पूरा और मोटा आदमी है। ख़िजाब की हुई काली छोटी-छोटी मूँछें और दाढी है। काली शेरवानी, उस पर काला चोगा और ढीला सफेद पायजामा पहने है। सिर पर तुर्की टोपी और पैरों में अँगरेज़ी जूते हैं। शेरवानी में चाँदी के मीना किये हुए बटन लगे हैं। भगवानदास लगभग पैंसठ वर्ष का साँवले रंग का बहुत मोटा और ठिगना मनुष्य है। बड़ी-बड़ी सफेद मूँछें हैं। मस्तक पर रामानन्दी मोटा तिलक है। सफेद अँगरखा और पायजामा पहने है। गले में जरी का सफेद दुपट्टा और सिर पर गोल पगड़ी है। पैरो में देशी जूते हैं। मोती की दो-लड़ की कंठी, हाथों में सोने के कड़े और कानों में सोने की मुरकियाँ पहने है। मुरकियों के भार से कानो के छेद बहुत लम्बे हो गये है।]

दामोदरदास : (विश्वनाथ से) कहिए, पण्डितजी, हिन्दू-सभा का काम कैसा चल रहा है? (सिगरेट की राख तश्तरी में झाड़ता है।)

विश्वनाथ : साधारणतया ठीक ही चल रहा है, गुप्ता साहब। आप जानते ही हैं कि आजकल हर काम मे शिथिलता है।

धनपाल : (यह भी अब सिगरेट पी रहा है) मुझे तो इस बात

पर आश्चर्य होता है कि पण्डितजी और मौलाना साहब हिन्दू-महासभा और मुस्लिम-लीग के कार्यों मे तो लड़ते हैं, पर म्यूनिस्पैल्टी मे मिल-जुलकर काम करते हैं।

शहीदबख़्श : वाह ! मिनिस्टर साहब, वाह ! यह आपने खूब फरमाया। हम लोगो का कुछ जाती झगडा थोडे ही है, उसूलो की लडाई है, और सबूत भी आप खुद ही दे रहे है। अगर कुछ जाती झगडा होता तो जिस कमिटी के पण्डित साहब प्रेसीडेण्ट हैं, उसका मैं वाइस-प्रेसीडेण्ट क्योकर रह सकता था ?

भगवानदास : बिलकुल ठीक फरमाते हैं, मौलाना साहब।

[कन्हैयालाल और प्रकाशचन्द्र का प्रवेश। अजयसिंह और नेस्टफील्ड कन्हैयालाल को दाहिनी ओर और प्रकाशचन्द्र को बाँयीं ओर भेजते हैं। कन्हैयालाल चला जाता है और धनपाल आदि सबों से मिल-जुलकर शहीदबख़्श की पासवाली कुर्सी पर बैठ जाता है। प्रकाशचन्द्र बाँयीं ओर जाकर चारो ओर देखता है। कुछ लोगों के मुख की ओर बड़े ध्यान से देखता है। बाँयीं ओर की सजावट को देख बाँयीं ओर की कुर्सियो पर नहीं बैठता, अजयसिंह दाहिनी ओर चला जाता है। प्रकाशचन्द्र और नेस्टफील्ड में बातचीत आरम्भ होती है। अब लोगो का ध्यान इस ओर आकर्षित होता है। कन्हैयालाल लगभग चालीस वर्ष का, दुबला-पतला, गोरे रंग का ठिगना मनुष्य है। बड़ी-बडी मूँछें हैं। खादी का कोट और धोती पहने है। गले में दुपट्टा है और सिर पर गांधी टोपी। चितकबरे मोटे फ्रेम का चश्मा लगाये है और कोट के ऊपर

के जेब में सोने के क्लिप का फाउन्टेन-पेन। पैरों में गुजराती स्लीपर हैं। प्रकाशचन्द्र गोरे रंग का, लगभग बाईस वर्ष का, ऊँचा, भरे हुए शरीर और मुख का अत्यन्त सुन्दर युवक है। रेख निकल रही है। खादी का कुरता, धोती और गांधी टोपी पहने है। पैरों में गुजराती स्लीपर हैं।]

प्रकाशचन्द्र : यह भेद-भाव यहाँ क्यो रखा गया है ?

नेस्टफ़ील्ड · मालूम होता है, आपने पहले-पहल ही इस तरह की पार्टी देखी है।

प्रकाशचन्द्र : जी हाँ, मैं गाँव से इस नगर मे कुछ ही समय पूर्व आया हूँ और इन थोडे से दिनो मे ही यहाँ का जो अनुभव हुआ है, वह बडा विचित्र है।

[नेपथ्य में मोटर का बिगुल बजता है, फिर मोटर खड़े होने का शब्द आता है। लाल वर्दी पहने हुए एक सिपाही का प्रवेश।]

सिपाही : (अजयसिंह को सलाम कर) लाट साहब तशरीफ ले आये, हुजूर।

[अजयसिंह जल्दी-जल्दी जाता है। सिपाही पीछे-पीछे जाता है। आगे-आगे गवर्नर की लेडी और उसके पीछे गवर्नर, चीफ सेक्रेटरी और गवर्नर के एडीकाँग का प्रवेश। सबसे पीछे अजयसिंह आता है। गवर्नर, लेडी और चीफ सेक्रेटरी साधारण अँग्रेजी कपड़े पहने हैं; एडीकाँग की फ़ौजी वर्दी है। प्रकाशचन्द्र गवर्नर से बात करने के लिए आगे बढ़ता है, परन्तु गवर्नर बिना कोई ध्यान दिये गद्दीवाली कुर्सियों की ओर जाता है। नेस्टफील्ड भी प्रकाशचन्द्र को वहीं छोड़ उसी ओर जाता है।

दाहिनी ओर वाले सब मेहमान एक-एक करके गवर्नर आदि से मिलते हैं। अजयसिंह गवर्नर के पास की गद्दीवाली कुर्सी पर बैठ जाता है। नेस्टफील्ड भगवानदास के पास की कुर्सी पर बैठता है। खाना-पीना और धीरे-धीरे बातें आरम्भ होती हैं, जो सुन नहीं पडतीं। प्रकाशचन्द्र इतनी देर तक इधर-उधर ध्यान से देखता रहता है और फिर बांयीं ओर की एक टेबिल पर की मिठाई आदि नीचे रख, उस पर खड़े हो, जोर से बोलना आरम्भ करता है। सब लोग आश्चर्य से उसे देखते हैं। नेस्टफ़ील्ड उसे रोकना चाहता है, पर गवर्नर संकेत कर मना कर देता है। वह बोलता जाता है।]

प्रकाशचन्द्र : बहनो और भाइयो ! इस नगर की अनेक बातो मे परिवर्तन की आवश्यकता है, उनमे से एक है धनियो और निर्धनो, पठितो और अपठितो, समाज मे किसी भी कारण से उच्च स्थान रखने वाले और पतित व्यक्तियो का परस्पर भेद-भाव। इस भेद-भाव का दर्शन यद्यपि मैंने इस नगर के अनेक व्यवहारो मे किया था, तथापि मुझे यह आशा न थी कि प्रीति-भोज मे, समान प्रीति से परस्पर मिलनेवाले अवसर पर भी, प्रीति के बीच, भेद-भाव को इस प्रकार का प्रधान स्थान रहेगा। प्रीति और भेद का, जो एक-दूसरे के परस्पर विरोधी हैं, विलक्षण मिलन इस प्रीति-भोज मे दिख रहा है।

बांयी ओर बैठे हुए कुछ व्यक्ति : ठीक, बिलकुल ठीक।

प्रकाशचन्द्र : महाशयो ! आप लोग ठीक तो कहते हैं, पर आपको कृपा कर अपने विचारो और कृति को मिलान

करके भी देखना चाहिए।

[दामोदरदास जोर से हँसता है। दाहिनी ओर के कुछ व्यक्ति उसका साथ देते हैं। बाँयीं ओर के व्यक्ति अपने खाने के लिए बढ़े हुए हाथों को रोक लेते हैं।]

प्रकाशचन्द्र : (दामोदरदास तथा अन्य बड़े आदमियों की ओर देखकर) आप लोग अपने भाइयो पर हँसते हैं! महाशयो! यह हँसने की नही, गंभीरता से विचार करने की बात है। यदि मेरे इन भाइयो को अपनी पतित अवस्था का ज्ञान नही है, और इस अवस्था तक मे ये आनन्द मानते हैं, तो इसमे इनका दोष कम और आपका अधिक है। आज शताब्दियो से आपने ही इन्हे दबाकर रखा है, इनके हृदयो के स्वतन्त्र भावो को कुचला है।

बाँयीं ओर के व्यक्ति : अवश्य, अवश्य।

प्रकाशचन्द्र : (बाँयीं ओर के पुरुषो को देख) परन्तु, प्यारे भाइयो! अब वह समय चला गया जब ये धनी, ये समाज के भूषण, ये समाज के स्तम्भ हम लोगो को इस प्रकार रख सके। मुट्ठी भर लोगो के धन की थैली, चाँदी-सोने के निर्जीव टुकडे एव इने-गिने व्यक्तियो की बुद्धि तथा विद्या का थोथा घमण्ड देश के करोडो निर्धनो और अपठितो की मनुष्यता को कुचल रखने मे असमर्थ हैं। प्यारे भाइयो! हमारा उत्थान हमारे हाथ मे है।

बाँयीं ओर के कुछ व्यक्ति : ठीक है, बिलकुल ठीक है।

[अनेक व्यक्ति प्रकाश के पास खड़े हो जाते हैं।]

प्रकाशचन्द्र : फिर, महाशयो! इस धन को उत्पन्न करनेवाले

कौन हैं ? किसान । परमेश्वर द्वारा दिये गये निर्धन और धनवान के समान, शरीर के रक्त को किसान पसीने मे वहाता है, उसके भूखे और नगे रहते हुए उसका उत्पन्न किया हुआ सारा धन (अजयसिंह तथा भगवानदास की ओर संकेत कर) इन धनवानो की तिजोरियो मे आता है, इन प्रीतिभोजो मे वहता है तथा वाहर खडी हुई मोटरो मे उड जाता है ।

बाँयीं ओर के पुरुष : शेम ! शेम !

प्रकाशचन्द्र : इसके सिवाय, विदेशी सरकार, जिसकी सत्ता इन्ही धनवानो पर निर्भर है इन्हे सहायता देती है और इस सहायता के वदले ये लोग इस सरकार को सुरक्षित रखने के लिए उचित ही नही. सर्वथा अन्यायपूर्ण मार्गों से इसकी सहायता करते हैं । इस प्रकार वस्तुएँ एक विचित्र चक्र मे घूम रही हैं, परन्तु, प्यारे भाइयो ! इस चक्र-व्यूह का विध्वस हमारे लिए आवश्यक हो गया है, इसके नाश मे ही हमारा उत्थान और इसकी स्थिति मे ही हमारा पतन है। अत: चलिए, हम यहाँ एक क्षण भी न ठहरेंगे ।

बाँयी ओर का एक युवक तुम्हारा नाम क्या है ?

प्रकाशचन्द्र : प्रकाश ।

वही युवक : प्रकाश की जय, भेद-भाव का नाश हो, इस भोज से असहयोग करो ।

बाँयी ओर के व्यक्ति . प्रकाश की जय, भेद-भाव का नाश हो!

[आगे-आगे प्रकाशचन्द्र जाता है । बाँयी ओर के व्यक्तियो

में थोड़ी-सी कानाफूसी होती है, परन्तु शीघ्र ही कुछ को छोड़कर सारे साधारण श्रेणी के पुरुष प्रकाशचन्द्र के पीछे-पीछे जाते हैं।]

दामोदरदास . (कन्हैयालाल से) वैल मिस्टर वर्मा, यह आप अपने साथ किसे ले आये ?

कन्हैयालाल : (घबड़ाए हुए) क्या कहूँ ! मुझे यह सन्देह तक न था कि यह व्यक्ति इतनी गडबडी मचायगा।

दामोदरदास : पर, यह है कौन ?

कन्हैयालाल : यह मैं भी नही जानता।

दामोदरदास : फिर, विना जान-पहचान के आदमी को कैसे ले आये ?

कन्हैयालाल : (कुछ सँभलकर) नही, लाने के लिए जितना जानने की आवश्यकता है, उतना जानता था। कई दिनो से यह 'हिन्दुस्थान'-कार्यालय मे आता था, मुझे अच्छा युवक जान पडा, नगर का सामाजिक जीवन देखने के लिए उत्सुक रहता था, निमन्त्रण-पत्र मे मित्रो को लाने का स्थान रहता ही है, अत ले आया।

दामोदरदास : (दूसरा सिगरेट जलाते-जलाते) तव तो, भाई, आगे से निमन्त्रण-पत्रो में भी सुधार करना होगा।

धनपाल : (सिर हिलाकर) ओह ! वडा गडवड हुआ। न जाने हिज़ एक्सलेंसी क्या सोचते होगे। (सिगरेट बुझाकर रकाबी में रखता है।)

नेस्टफील्ड : (सिर नीचा किये हुए सिगार पीते-पीते) मेरा तो

सब इन्तजाम ही खराब हो गया, क्या कहूँ। मुझे तो हिज एक्सलेसी को अपना चेहरा दिखाने मे भी शर्म आती है।

विश्वनाथ : (चिन्तित होकर) यदि यह युवक यहाँ रहा तो यहाँ के सार्वजनिक जीवन मे कदाचित् फिर वैसी ही गडबडी मचेगी, जैसी असहयोग और सत्याग्रह के समय मची थी।

शहीदबख्श : (बेपरवाही से सिगरेट पीते हुए) आप हिन्दुओ को सँभालिए, मुसलमानो मे इसकी दाल न गलेगी, क्योकि शहर के हिन्दू ही जोशीले हैं।

कन्हैयालाल : (भर्राए हुए शब्दो में धीरे-धीरे विश्वनाथ से) मैं समझता हूँ, मेरा भी यहाँ ठहरना अब ठीक नही है, नही तो नगर मे अनेक प्रकार की चर्चायें होगी। (जाता है।)

[मेहमानो को फूल-मालाएँ पहनायी जाती है तथा फूलों की तुर्रियाँ, चाँदी के वर्क लगे हुए पान और इलायची आदि दी जाती है। गवर्नर जाने को उठता है, उसी के सग कई लोग उठते हैं।]

गवर्नर : (जाते हुए, नेस्टफील्ड से) ए ब्रिलियन्ट स्पीकर देट यग मैन वाज, डॉक्टर।

नेस्टफील्ड : (घबडाये हुए) वैल सर, वैल सर ।

[गवर्नर आदि का प्रस्थान]

धनपाल : (जाते हुए, अजयसिंह से हाथ मिला) वैल, राजा साहब। (सिर हिलाता है।)

[अ]जयसिंह : (भर्राये हुए शब्द में धीरे-धीरे) क्या कहूँ, मिनिस्टर साहब, आप ही के हाथ बात है; आप ही सँभालिये।

[ज]नपाल : (सिर हिलाते हुए धीरे से) मैं देखूँगा। (जाता है।)

[विश्वनाथ, शहीदबख़्श, दामोदरदास, रुक्मिणी, थेरिजा [आ]दि अजयसिंह और नेस्टफ़ील्ड से मिलकर जाते हैं।]

[म]नोरमा : (जाती हुई, सुशीला से धीरे-धीरे) कितना सुन्दर भाषण था, सुशीला !

सुशीला : मैं तो मन्त्र-मुग्ध-सी हो गयी थी, बहन।

मनोरमा : और मेरे हृदय मे तो कई बार आया कि मैं भी इस भोज से असहयोग कर उस युवक के पीछे-पीछे चल दूँ।

[दोनों का प्रस्थान]

नेस्टफील्ड : (सबके जाने के पश्चात्) बहुत बुरा हुआ, राजा साहब।

अजयसिंह : (घबड़ाये हुए) क्या कहूँ, बैरिस्टर साहब।

नेस्टफील्ड : आपसे गवर्नर साहब ने क्या कहा ?

अजयसिंह : कुछ भी नही, प · प · पर · ·।

नेस्टफील्ड : यह सब कन्हैयालाल ने किया। आप उसे इतना खिलाते हैं, फिर भी वह कुछ न कुछ गडबड किया ही करता है। मैं हमेशा आपसे कहता हूँ कि इन अख़बार-नवीसो पर ज़रा भी यकीन न कीजिए।

अजयसिंह : पर, बैरिस्टर साहब, आजकल बिना इनको हाथ मे रखे भी तो काम नही चलता।

नेस्टफील्ड : ख़ैर, अब सबसे पहले उस बदजात कन्हैयालाल को ही सँभालना पड़ेगा। उसके सँभालने की तरक़ीब तो

आप जानते ही हैं, वही थैली की नजर। पर मुश्किल तो यह है कि आपका एक पैसा भी ख़र्च होने से मेरी जान निकलती है। (कुछ ठहरकर) अच्छा, अब परेशान न होइए, आराम कीजिए, जो कुछ भी होगा ठीक किया जायगा।

अजयसिंह : मैनी-मैनी थैंक्स बैरिस्टर साहब।

[दोनों का प्रस्थान। परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान : रानी कल्याणी के कमरे की दालान

समय : सन्ध्या

[दालान के पीछे की दीवाल रंगी हुई है । कोई दरवाजा नहीं है । दोनों सिरों पर दो खम्भे हैं । अजयसिंह का एक ओर से प्रवेश ।]

अजयसिंह : (जोर से) कल्याणी ! कल्याणी !

नेपथ्य से : आयी, महाराज ।

[कल्याणी का दूसरी ओर से प्रवेश । कल्याणी लगभग चालीस वर्ष की दुबली, लम्बी और गोरे रंग की स्त्री है। मुँह पर शोक-चिह्न दिखायी देते हैं। बड़ी-बड़ी आँखो के चारों ओर गड्ढे पड़ गये हैं। शरीर पर सफ़ेद रेशमी सादी साड़ी और चोली है। हाथो में काँच की चार-चार और मोतियों की दो-दो चूड़ियाँ है । गले में मोतियों की कंठी, नाक में हीरे की लौंग और कानो में हीरे के कर्णफूल तथा मोतियो के झुमके हैं । सिर पर इंगुर की टिकली और माँग में सेंदुर है, बाल पुराने ढंग से सँवारे हुए हैं । पैरों में सोने के छड़े तथा स्लीपर हैं ।]

अजयसिंह : (भर्राये हुए स्वर में) तुमने सुना, आज और क्या

अनर्थ हुआ ?

कल्याणी : अभी-अभी सब सुनकर आयी हूँ ।

अजयसिंह · न जाने भाग्य मे और क्या बदा है। जो कर्म किये हैं, उनका फल तो भोगना ही होगा। जवानी के पापो का बुढापे मे प्रायश्चित करना है। इधर सर भगवानदास का बढता हुआ कर्ज़ खाये जाता है, उधर वश का जो थोडा-बहुत सम्मान है उसकी रक्षा के लिए नित नये खर्च करने पडते हैं और इतने पर भी कोई न कोई सरकारी तोहमत खडी हो जाती है।

कल्याणी · महाराज, क्षमा करे, बढते हुए कर्ज के चुकाने के लिए मितव्ययिता की आवश्यकता है, परन्तु केवल काल्पनिक मान और ऐश्वर्य के दिखावे के लिए आप उल्टा अधिक ख़र्च कर, एक प्रकार से पाप का पाप से नाश करने की निरर्थक चेष्टा कर रहे हैं। सरकारी आपत्तियाँ, आपके उन्हे निरन्तर प्रसन्न करने का प्रयत्न करते रहने पर भी, आप ही कहते हैं, बढती जाती हैं। भक्ति का फल तो ससार मे सदा अच्छा मिलता है, परन्तु इस भक्ति से तो, जैसे-जैसे भक्ति बढती जाती है वैसे-वैसे, भक्त का कष्ट बढता जाता है, महाराज, यह ख़र्च और भक्ति की प्रणाली ही ।

अजयसिंह : (बात काटकर) पर, कल्याणी, वह प्रकाश, सच्चा प्रकाश था। कैसा सुन्दर मुख, कैसा सुन्दर शरीर और कैसी सुन्दर बोली ! उसके इतने अनर्थ करने पर भी जब मैं उसकी ओर देखता था, मेरा हृदय प्रेम से उसकी ओर

खिंचता-सा जान पड़ता था। अपुत्रक होने के क्लेश का जितना अनुभव मैंने आज किया, उतना इसके पूर्व आज तक कभी न किया था। कल्याणी, इन्दु को घर से न निकालता और उसके गर्भ से यदि पुत्र ही हो जाता तो वह आज प्रकाश की ही उम्र का होता, क्यों ?

कल्याणी : हाँ, महाराज, उस बात को आज बाईस वर्ष हो चुके।

अजयसिंह : आह ! कल्याणी, वह सारी घटना आज फिर आँखों के सम्मुख घूम रही है। (जल्दी-जल्दी) उन ज्योतिषियों के झाँसे में आ, कि मुझसे उसे पुत्र न होगा, इन्दु-सदृश सुन्दर और विदुषी स्त्री के रहते केवल छत्तीस वर्ष की उम्र में तुमसे विवाह किया। उसके दो वर्ष के बाद जब इन्दु के ही गर्भ रह गया तो उस पर व्यभिचार का सन्देह कर, उसे घर से निकाल दिया। (हाथ मलते हुए) कल्याणी, कल्याणी, मैं खुद तो चरित्रहीन था ही, सारी सम्पत्ति नष्ट कर ही डाली, पर हाय उस पतिव्रता पर सन्देह का पाप क्यों किया ?

कल्याणी : पर, अब इस शोक से क्या होगा, महाराज ? किये हुए बुरे कर्मों का निवारण उन्हें भूलने के प्रयत्न से ही हो सकता है। उन्हें याद कर-करके तो आप अपना शोक और बढ़ा रहे हैं, स्वास्थ्य और बिगाड़ रहे हैं।

अजयसिंह : सचमुच तुम स्त्रियाँ देवियाँ होती हो, कल्याणी। मुझसे तुम्हें इतनी सहानुभूति ! मैंने तुम्हें क्या सुख दिया? कुछ नहीं, कल्याणी, कुछ नहीं। इन्दु को और तुम्हें, दोनों

को ही कष्ट दिया, दोनो पर ही अत्याचार किये, और तुम दोनो ने क्या न किया ? जिस शराब के छूने में भी तुम लोग पाप समझती थी, उसी शराब के प्याले भर-भरकर मुझे पिलाये। मेरे कारण वेश्याओ ।

कल्याणी : (बात काटकर) महाराज, उन बातो का तो स्मरण न दिलाना ही ठीक है।

अजयसिह : (टहलते हुए) मैंने सिर्फ इतने ही पाप नही किये, कल्याणी, स्त्री और गर्भ मे अपने पुत्र की भी हत्या की। हा ! इन्दु ने निश्चय ही आत्म-हत्या कर ली होगी, नही तो क्या लगभग बीस वर्ष तक, इतनी कोशिश करने पर भी, उसका पता न चलता ?

कल्याणी : इसमे तो कोई सन्देह नही है, महाराज।

अजयसिह : कल्याणी मैं कौनसे नरक मे पड़ूँगा ? नरक मे भी शायद मेरे लिए स्थान न हो।

कल्याणी : चलिए, भोजन कीजिए, इन सब बातो को भूल जाइए। जितने दिन अब ससार मे रहना है, सुख से रहने का प्रयत्न करना चाहिये।

अजयसिह : (लम्बी सांस लेकर) पापियो को कभी सुख मिल सकता है, कल्याणी ? स्वप्न मे भी नही, स्वप्न मे भी नही।

कल्याणी : चलिए, चलिए।

[दोनो का प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान : दामोदरदास गुप्ता के सोने का कमरा

समय : रात्रि

[कमरा आसमानी रंग से रँगा है। तीन ओर दीवालें हैं। पीछे की दीवाल के बीच में एक दरवाजा है और दोनों ओर की दीवालों में एक-एक खिड़की। दरवाजा बन्द है, पर खिड़कियाँ खुली हैं जिनमें से चाँदनी में चमकता हुआ, बाहर के उद्यान का दृश्य दिखायी देता है। दरवाजे और खिड़कियों के दोनों ओर एक-एक तैल-चित्र लगा है। ये चित्र विलायत के दो दृश्यों के हैं। कमरे की छत आसमानी रंग से रँगी है। छत से केवल सफेद रंग का बिजली का पंखा झूल रहा है। दीवालों पर बिजली की बत्तियों के ब्रेकेट लगे हैं। पृथ्वी पर रेशमी कालीन बिछा है। बाँयी ओर चाँदी के पायों का सुन्दर पलंग है, जिस पर जाली की मच्छरदानी पड़ी है। दाहिनी ओर एक सोफा है। सोफ़ा के पास एक टेबिल है, जिस पर बिजली का टेबिल-लैम्प जल रहा है; साथ ही सिगरेट-केस, माचिस की डिबिया, सिगरेट की राख झाड़ने की रकाबी (एश-ट्रे) आदि रखे हैं। दामोदरदास सोने के समय के अँगरेजी धारीदार

रेशमी कपड़े (स्लीपिंग-सूट) पहने सोफे पर बैठा है। पास ही में रुक्मिणी पतली-सी बैगनी रँग की रेशमी साड़ी पहने हुए बैठी है।]

दामोदरदास : तो तुम समझती हो कि उसका भाषण बहुत सुन्दर था, रुक्मिणी ?

रुक्मिणी : चाहे उनके विचारों से हम सहमत न हों, पर इसमें सन्देह नहीं कि उसकी शैली और भाषा अत्यन्त सुन्दर थी। हर शब्द मे सत्यता, ओज और दृढ़ता टपकती थी; फिर उसमे उद्धतता न होकर दृढ़ता थी। मेरी तो समझ मे नही आता कि एक ग्रामीण युवक इस तरह कैसे बोल सकता है ?

दामोदरदास : (मुसकराकर) और इसी प्रकार, रूप मे भी वह सुन्दर था, डियर ?

रुक्मिणी : (दामोदरदास के गाल पर हल्की-सी चपत लगाकर) तुम समझते हो, मैं उस पर आसक्त हो गयी हूँ ?

दामोदरदास : यह मैं कहाँ कहता हूँ, पर वह अत्यन्त सुन्दर था, इसमे तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता।

रुक्मिणी : था, फिर ?

दामोदरदास : कुछ नही, तुमने उसके भाषण की तारीफ की और मैंने उसके रूप की, इसमे हानि क्या हुई ?

रुक्मिणी : हानि-लाभ का सवाल ही कहाँ है ? (मुसकराकर) यह तो रुचि-वैचित्र्य है। (कुछ ठहरकर) और समाज-शास्त्र की दृष्टि से उसके विचार ठीक न थे, क्यो ?

दामोदरदास : विलकुल गलत। देखो, ससार के इतिहास मे आज

तक धनी-निर्धन, पठित-अपठित हमेशा रहे हैं। धनी-वर्ग ने निर्धनों पर राज्य किया है और पठित समाज ने अपठितों पर। समानता का सिद्धान्त ही ठीक नही है।

रुक्मिणी : और अब तक दुनिया मे जो होता आया है, वही भविष्य मे भी होगा? कोई नयी बात हो ही नही सकती?

दामोदरदास : हिस्ट्री रिपीट्स इटसेल्फ। बिलकुल नयी बात ससार मे नही हो सकती।

रुक्मिणी : लेकिन तुम भी तो मनुष्यो की समता के लिए कौंसिल मे भाषण दिया करते हो। तुम्हारी यह इरीगेशन-स्कीम गरीबो को सुख देने के लिए ही है। सोशल रिफार्म के बिल इसीलिए हैं। ह्यूमैनटेरियन लीग भी इसीलिए है। तुम फिर क्यो ऐसे सिद्धान्तो का पाठ पढा रहे हो?

दामोदरदास : यह दूसरी बात है, डियर तुम समझती हो कि मैं जो कुछ भाषणो मे कहता हूँ उस पर विश्वास करता हूँ। (**सिगरेट और माचिस की डिब्बी उठा सिगरेट जलाते हुए**) हाँ जनता को, (**माचिस बुझ जाती है, इसलिए दूसरी जलाकर**) जनता को प्रसन्न करने के लिए गरीबो के हित के लम्बे-लम्बे भाषण देना जरूरी हो जाता है, नही तो दूसरे चुनाव मे सफल होना कठिन हो जावे।

[रु]क्मिणी · ऐसी बात है?

[दा]मोदरदास : अवश्य, मेरी इरीगेशन-स्कीम को ही ले लो, इस स्कीम से जनता को लाभ पहुँचेगा, लेकिन उससे कही ज्यादा फायदा तो मुझे होगा; क्योकि उस केनाल

का ठेका तो मेरी कम्पनी को ही मिलेगा। फिर ये जॉइन्ट-स्टॉक-कम्पनी क्या हैं ? इनका लाभ भी यथार्थ मे इने-गिने एजेण्टो और डायरेक्टरो को ही मिलता है।

रुक्मिणी : हाँ, तुम कहते ही थे कि अच्छी कम्पनियो के शेयर सर्वसाधारण मे जाने ही कहाँ पाते हैं। हाँ, बुरी कम्पनियो की दूसरी वात है जिनके शेयर वेचकर शेयरो का रुपया ही मैनेजिंग एजेन्ट और डायरेक्टर खा जाते हैं।

दामोदरदास : सारे ससार मे यही हो रहा है। जनता के नाम पर कुछ व्यक्तियो का लाभ, यह हमेशा से होता आया है और भविष्य मे भी सदा यही होता रहेगा। जो लोग इसका सच्चा रहस्य नही समझते और 'जनता-जनता' सच्चे हृदय से चिल्लाते हैं, वे मूर्ख हैं। (जोर से धुआँ खींच छोड़ते हुए) सोशल रिफार्म, ह्यूमैनटेरियन लीग, हिन्दू-मुस्लिम-हित, सव जनता को भुलावे मे रखने की चीजे हैं। हिन्दू-मुस्लिम-हित तो इस देश मे जनता को भुलावा देने के लिए सवसे वडी वात है।

रुक्मिणी : इसमे शक नही, धर्म और जाति के नाम पर यहाँ जनता को जितना उभाडा जा सकता है, उतना किसी दूसरी वात से नही।

दामोदरदास : विश्वनाथ और शहीदवख्श उस प्रकाश के मानिन्द मूर्ख थोडे ही हैं, दोनो वडे घुटे हुए हैं। हिन्दू-हित और मुस्लिम-हित की डीगे जरूर मारते हैं, पर म्यूनिस्पैल्टी मे कैसे मिल-जुलकर काम करते हैं।

रुक्मिणी : म्यूनिस्पैल्टी मे इनका कुछ स्वार्थ होगा ?

दामोदरदास : खाने को मिलता है और अगर आपस मे लडे तो वह न मिले। मिलकर ही खाना हो सकता है।

रुक्मिणी : और खाने का अवसर भी मिल जाता है ?

दामोदरदास : अवसर ? एक नही हज़ार। किसी ने मकान बनाने की स्वीकृति मॉगी, गुट तो पहले से ही बना रहता है, कह दिया, इतना दो तो इतने वोट पक्ष मे दिलाते हैं, नही तो मकान ही न बन पायगा। किसी काम का ठेका देना हुआ, कह दिया, जो इतना देगा उसको ठेका दिलाया जायगा, नहीं तो हर काम मे आपत्ति निकाल दी।

रुक्मिणी : हाँ, आपत्तियॉ निकालने मे क्या देर लगती है।

दामोदरदास : फिर ज्यादातर मैंम्बर और वैतनिक कर्मचारी मिले रहते हैं और इस तरह दोनो को खाने को मिल जाता है। साधारण-साधारण लोग म्यूनिस्पैल्टी के चुनाव मे जो इतना खर्च कर देते हैं, (राख तश्तरी में झाड़ते हुए) वे खर्च नही करते, पूँजी लगाते हैं।

रुक्मिणी : और उस पूँजी का व्याज मूल से दूना, चौगुना मिल जाता होगा ?

दामोदरदास : ज़रूर।

रुक्मिणी : सभी ऐसा करते हैं ?

दामोदरदास : कुछ मूर्ख और कायर हैं, वे न करते होगे।

रुक्मिणी : जो ऐसा न करे, वे मूर्ख और कायर हैं, क्यो ?

दामोदरदास : जब दुनिया में बहुमत ऐसे लोगो का है तब जो ऐसा न करे वे मूर्ख तो हैं ही। फिर इस तरह के कार्यों

मे बडी वीरता की ज़रूरत होती है, जिनमे यह शौर्य नही, वे कायर है ।

रुक्मिणी : और कौंसिल के चुनाव मे जो इतना खर्च होता है सो ?

दामोदरदास : वह और बडे स्वार्थ के लिए । कोई मिनिस्टर होना चाहते है, किसी को सरकारी बडे-बडे ठेके और काम मिल जाते है और इन ठेको मे मिनिस्टर भी शामिल रहते है ।

रुक्मिणी : जैसे तुम्हारी इरीगेशन-स्कीम मे है ।

दामोदरदास : अवश्य, मिनिस्टर साहव इसीलिए उनका समर्थन कर रहे है कि उनका भी ठेके मे काफी भाग रहेगा । फिर असेम्वली मे जाने वाले, फाइनेन्स मैम्बर, कामर्स मैम्बर आदि को हाथ मे रखने की कोशिश करते है । इनके हाथ मे रहने से किस वस्तु पर टैक्स घटे-बढेगा, यह, तथा अनेक इसी प्रकार की बातें पहले से मालूम हो जाने के कारण वाजारो की होने वाली घटी-बढी का बहुत सा पता लग जाता है ।

रुक्मिणी : अच्छा !

दामोदरदास : और उसमे लाखो रुपयो का लाभ होता है ।

रुक्मिणी : सभी मैम्बर ऐसा कर देते है ?

दामोदरदास : प्राय , हाँ, कभी-कभी स्वराजिस्ट्स के सदृश कुछ मूर्ख भी आ जाते है ।

रुक्मिणी : तो ससार इसी प्रकार चल रहा है ?

दामोदरदास : आज क्या, हमेशा से इसी तरह चलता आ रहा

है और भविष्य मे भी इसी प्रकार चलेगा। मैं तो समझता था कि तुम इन बातो को अच्छी तरह समझती हो, विलायत हो आयी हो और कई बार इन विषयो की चर्चा भी हो चुकी है।

रुक्मिणी : अभी और कई बार होनी चाहिए, तब ये बाते मस्तिष्क मे पूर्ण रूप से बैठेगी। नयी बातो को दिमाग मे जमाने के लिए कई उपदेश जरूरी होते हैं। (सिगरेट जलाती है।)

दामोदरदास : अच्छा, एक बात तो आज भली भाँति जमा लो।

रुक्मिणी : वह क्या ?

दामोदरदास : वह यह कि बडे से बडे और छोटे से छोटे सिद्धान्त जनता को भुलावे मे डालने के लिए हैं। ज्यादा लोग दुखी रहेंगे और थोडे सुखी, यही सच्चा सिद्धान्त है। पहले दुनिया मे सबसे अधिक रिलीजन अर्थात् धर्म, फिर क्राउन अर्थात् राज-भक्ति और फिर पेट्रीऑटिज्म अर्थात् देश-प्रेम की दुहाई दी जाती थी, अब इक्वेलिटी अर्थात् समानता की दी जाने लगी है। न तो पहले के किसी सिद्धान्त मे कोई तत्त्व था और न आधुनिक साम्यवाद में ही कोई तत्त्व है।

रुक्मिणी साम्यवाद मे भी नही ?

दामोदरदास हाँ, साम्यवाद मे तो और भी नही। कार्लमार्क्स ने इसे साइन्टिफिक स्वरूप अवश्य दिया था। सारा ससार 'सोशलइज़्म, सोशलइज़्म', 'डाउन विथ बूर्ज्वाज, डाउन विथ बूर्ज्वाज' चिल्लाया भी बहुत, रूस मे लेनिन

की कोशिश से इसी सिद्धान्त के आधार पर एक क्रान्ति भी हो गयी, पर नवीनता प्राचीनता मे परिणत होते ही अन्य सिद्धान्तो के समान यह भी लचर हो चला है। लेनिन के मरते ही स्टेलिन ने कार्लमार्क्स और लेनिन के साम्यवाद के सबसे प्रधान सिद्धान्त पर ही कुठाराघात किया है।

रुक्मिणी : वह कौनसा सिद्धान्त है ?

दामोदरदास सारे ससार पर साम्यवाद की स्थापना। कार्ल-मार्क्स और लेनिन की इन्टरनेशनल अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय नीति को स्टेलिन ने नेशनल अर्थात् राष्ट्रीय रूप दे दिया है। रूस के पडोसी देश इटैली मे मुसोलिनी का फैसिस्ट-वाद और जर्मनी मे हिटलर का नाजीवाद इस साम्यवाद की नीव पर ही जो कुठाराघात कर रहा है वह तुम पत्रो मे पढ ही रही हो, और इसका कारण है।

रुक्मिणी : वह क्या ?

दामोदरदास : वह यह कि यह सिद्धान्त ही अस्वाभाविक है। अन्य सिद्धान्तो के समान यह सिद्धान्त भी जनता को भुलावे मे डालने के लिए एक साधन हो सकता है। न पहले सिद्धान्तो मे कोई तत्त्व था और न इसमे है। जैसा मैंने तुम से अभी कहा ज्यादा लोग दुखी रहेगे, थोडे से सुखी, क्योकि यही स्वाभाविक—प्राकृतिक नियम है।

रुक्मिणी : अधिक का दुखी और थोडो का सुखी रहना प्राकृतिक नियम है ?

दामोदरदास : जरूर, बात यह है कि अधिक के आधार पर

थोड़ों की विशिष्टता यही निसर्ग सदा ५.
करती रहेगी । जड और चेतन दोनो प्रकारमें भी एक
हमें यही वात दिखायी देती है । घास-फूँस की ५.
और पुष्प-फलो की कमी, अन्य जीव-जन्तुओ की अधि५.
और मनुष्य-वर्ग की कमी इसी नियम का परिणाम है।
(जोर से धुआँ खींचकर छोड़ते हुए) प्रकृति की सर्वो-
त्कृष्ट उत्पत्ति मनुष्य है और मनुष्यो मे सर्वोत्कृष्ट मनुष्य
धनवान, क्योंकि धन ही मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ बना सकता
है । धन थोड़े ही व्यक्तियो के पास ज्यादा परिमाण मे
रह सकता है, अत जिस प्रकार अन्य समस्त सृष्टि थोडे
से मनुष्य-समुदाय के उपयोग के लिए है, उसी तरह अधि-
काश मनुष्य थोड़े से मनुष्यो के उपयोग के लिए हैं, और
इस प्रकार थोडे मनुष्यो के सुख के लिए ज्यादा का दुखी
रहना, प्रकृति का स्वाभाविक नियम सिद्ध हो जाता है ।

रुक्मिणी : (राख तश्तरी में झाड़ती है फिर सिगरेट पीते और कुछ सोचते हुए) तुम्हारा कहना तो ठीक जान पड़ता है ।

दामोदरदास : मेरा ही यह कहना नही है । पश्चिम का यह लेटेस्ट थॉट है । तुम जानती हो, इस समय जो जर्मनी सबसे शीघ्र और सबसे अधिक उन्नत हो रहा है, वहाँ सबसे महत्त्व की वात क्या हो रही है ?

रुक्मिणी : क्या ?

दामोदरदास : हिटलर की कैबिनेट का एक प्रधान व्यक्ति वहाँ जन्म से ही विशेषता रखने वाली एरेस्टाक्रेसी की स्थापना करने का प्रयत्न कर रहा है, और, ध्यान मे रखना कि

गाधी चाहे लँगोटी लगाकर 'दरिद्रनारायण, दरिद्रनारायण' किनना ही क्यो न चिल्लाए, जवाहरलाल भारत मे सोशलिस्ट-इस्टेट स्थापित करने की चाहे कितनी ही वडी-वडी योजनाएँ क्यो न वनाए, जव सच्चा सोशल्इजिम रशा मे इतनी बडी कोशिश पर भी स्थापित न हुआ, जव उसके विरुद्ध उसके पडोसी राष्ट्र इटैली, जर्मनी आदि ने कमर कसी है, तव भारत मे तो उसकी स्थापना कठिन ही नही असम्भव है, क्योकि यह देश तो अपने धर्म, अपनी सस्कृति, हर दृष्टि से साम्यवाद के खिलाफ है।

रुक्मिणी : तो तुम्हारी राय है कि इस देश मे स्वराज्य स्थापित न होगा ?

दामोदरदास : स्वराज्य स्थापित होना एक वात है और साम्यवाद की स्थापना दूसरी। कोई भी परतन्त्र देश शीघ्र या विलम्ब से स्वतन्त्र तो होता ही है, पर स्वराज्य होने पर भी यह देश सोशलिस्ट न होगा। (ज़ोर से धुआँ खीचकर छोडते हुए) जनता को भुलावे मे डाल-डालकर, उसके नाम पर, हम थोडे से मनुष्य सारे कार्य करेंगे। उनसे अगर वारह आने हमारा फायदा होगा तो चार आने जनता का भी हो जायगा। यदि वुद्धिमानो के एक रुपये मे चार आने मूर्खो को मिल जायँ तो क्या कम हैं ? हम सुशिक्षित लोग मूर्खो पर इससे ज्यादा और क्या दया दिखा सकते है ?

रुक्मिणी हाँ दया का गुण ही है कि देनेवाले और पानेवाले दोनो को ही इससे लाभ होता है। फिर हम दान भी तो

देते हैं ।

दामोदरदास : ठीक कहा, पर, हाँ, दान के सम्बन्ध मे भी एक बात का ज़रूर ध्यान रखना चाहिए ।

रुक्मिणी : वह क्या ?

दामोदरदास : दान ऐसे ही कार्यों मे दिया जावे जिससे कीर्ति के कारण सारे देश-विदेश के समाचारपत्र भर जावें ।

रुक्मिणी : हाँ, कीर्ति के लिए तो दान दिया ही जाता है ।

दामोदरदास : नही, उससे एक फायदा और है । देश के सभी लीडरों से जान-पहचान बढती है, अनेक राजनैतिक परिवर्तन पहले मालूम हो जाते हैं । और अधिक आमदनी का अवसर मिलता है ।

रुक्मिणी : अधिक दान देने के लिए भी तो इसकी जरूरत है, क्योकि दस रुपयो का लाभ न किया जाय तो एक रुपया दान कैसे किया जा सकता है ?

दामोदरदास : वाह ! वाह ! क्या समझ की बात कही है ।

रुक्मिणी : (मुसकराकर) इसी तरह कभी-कभी समझा दिया करो तब पक्की होऊँगी ।

दामोदरदास : पक्का होने मे कुछ वक्त तो लगता ही है, डियर।

रुक्मिणी : तो फिर अब लेडीज एसोसिएशन मे कुछ भी करने को नही है ।

दामोदरदास : यथार्थ मे तो कुछ नही है, लेकिन दिखावा तो है, ससार बहुत आगे बढ गया है, बिना इन राष्ट्रीय स्वार्थो के दिखाये अब अपना स्वार्थ भी तो नहीं सध सकता ।

रुक्मिणी : तुम तो अभी कहते थे, हमेशा यही होता आया है।

दामोदरदास . अभी भी मैं वही कहता हूँ। प्रणाली मे सदा अन्तर होता है। पहले दूसरी प्रणाली से स्वार्थ-साधन होता था, अब दूसरी प्रणाली से। होता हमेशा यही रहा है और यही हमेशा होता रहेगा।

रुक्मिणी : (कुछ ठहरकर) अच्छा, और तो सब समझ लिया, पर तुम अपनी इस माता लेडी साहबा को तो समझाओ कैसे वस्त्र, कैसे आभूषण पहनती है। स्वय मठा भाँती है, वर्तन माँजती है। हम लोग इतनी सभ्यता से रहें और वह इस तरह रहे। इससे बडी अकीर्ति होती है। तुमने मेरा परदा तो छुडा दिया, पर उसे तो ठीक करो। (एकावी में राख झाडते हुए) दिन-रात धर्म। माँ होकर भी तुम्हारी बुराई कि तुम भ्रष्ट हो गये, मुझसे तो सुनी नही जाती। अजयसिंह हमारे घर का कर्जदार है, पर उसके घर की रहन-सहन देखो और हमारे घर की देखो।

दामोदरदास : (लम्बी साँस लेकर खाँसते हुए) क्या कहूँ, सचमुच उसके मारे बडी आफत है। प्रयत्न तो सदा करता हूँ, पर सभ्यता आने मे तो समय लगेगा। हमारे यहाँ टाइटिल बडी से बडी हो गयी, सब कुछ हो गया, पर, सच तो यह है कि टाइटिल से होता ही क्या है।

रुक्मिणी : हाँ, यह तो आजकल विकने लगी है।

दामोदरदास : अजयसिंह चाहे कर्जदार हो, या कुछ ही क्यो न हो, पुराना रईस है। उसके यहाँ अगर नवीन ढग की नही तो पुराने ढग की सभ्यता है।

रुक्मिणी : हॉ, हम तो अभी पन्द्रह वर्ष से बढे हैं।

दामोदरदास : पर देखो, फिर भी फॉदर विचारो मे कैसे ठीक हो गये हैं। (रकावी में राख झाड़कर) यद्यपि उनके तिलक, कपडे और आभूषण ठीक न हुए और न होने की उम्मीद ही है और उनकी तोतली बोली तो ठीक होना असम्भव ठहरा।

रुक्मिणी : बिलकुल असम्भव।

दामोदरदास : पहले वे भी परदा छोडने और मेरे खाने-पीने की स्वतन्त्रता के कितने विरुद्ध थे, लेकिन जब उन्होने देख लिया कि आजकल बिना अँगरेजो के साथ खाये-पिये और औरतो को उनके समाज मे ले गये आर्थिक स्वार्थ भी नही सधता, तब मान गये।

रुक्मिणी : हाँ, यह तो उनकी सबसे बडी दवा है।

दामोदरदास : याद नही है कि विलायत जाने का उन्होंने कितना विरोध किया था ? इसी तरह धीरे-धीरे सभ्यता आयगी।

रुक्मिणी : यह सब तो माना, परन्तु तुम्हारी मॉ को तो अब जल्दी ही ठीक करने के लिए ऐसा ही कोई उपाय निकालना होगा।

दामोदरदास : सोच रहा हूँ, पर कोई तरकीब सूझती ही नही, ठीक न होगी तो सदा थोडे ही जीती रहेगी, बूढी हो ही गयी है, दो-चार वर्ष की पाहुनी है।

रुक्मिणी : पर जब तक जियेगी तब तक तो अनर्थ कर डालेगी। सच तो यह है कि तुम्हे छोड घर मे सारे ऐसे ही हैं।

माँ-बाप पुराने समय के होने के कारण ऐसे हैं और आज-कल के विचारो के होने पर भी तुम्हारी वहन मनोरमा तुम्हारे सिद्धान्तो के विरुद्ध महात्मा गाधी की सबसे वडी शिष्या ही बनी जाती है। (राख रकावी में झाड़ते हुए) दिन-रात पुस्तकें, समाचार-पत्र और सुशीला.....।

दामोदरदास : यह लडकी जरूर कुल को कलक लगायगी। मैं भी तो स्कूल और कॉलेजो मे ही पढा हूँ, परन्तु कहाँ मैं और कहाँ वह ! (कुछ ठहरकर बचे हुए सिगरेट को बुझाते और रकावी मे रखते हुए) अच्छा चलो, अब आराम करें, देर हो गयी है।

[रुक्मिणी भी अपना बचा हुआ सिगरेट बुझा रकावी में रखती है। दोनो उठते हैं। परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

स्थान प्रकाशचन्द्र के घर का बाहरी भाग

समय रात्रि

[छोटे से घर का, लाल खपरों का, छप्पर दिखता है। उसको बाहरी दालान की दीवाल और दीवाल के दोनों ओर दो खम्भे दिखायी देते हैं। दीवाल और खम्भे दोनो सफेद कलई से पुते हैं। एक ओर से प्रकाशचन्द्र का अपनी साधारण वेश-भूषा में प्रवेश।]

प्रकाशचन्द्र : (जोर से) माँ ! ओ माँ !

नेपथ्य से : आयी बेटा !

[दूसरी ओर से तारा का प्रवेश। तारा लगभग सत्तर वर्ष की, गोरी, ठिगनी और दुबली स्त्री है। सारे बाल सफेद हो गये हैं। कमर कुछ झुक गयी है। नेत्र देखने से जान पड़ता है कि वे रो-रोकर छोटे हो गये हैं। मुख पर और शरीर में झुरियां हैं। एक मोटी सफेद खादी की साड़ी और वैसी ही चोली पहने है। कोई आभूषण नहीं है। पैर नंगे हैं। शोक की मूर्तिमान् प्रतिमा दिखायी देती है।]

प्रकाशचन्द्र (ध्यान से तारा का मुँह देखकर) माँ, आज तू

फिर अत्यधिक उदास है। तेरे नेत्रो मे लालिमा देखकर स्पष्ट जान पडता है कि आँसुओ की तपन ने तपाकर उन्हे लाल कर दिया है। (जोर से) बता, माँ, सच बता, क्या बात है ?

तारा : (बैठते हुए प्रकाशचन्द्र को गोद में लिटाकर) बेटा, जब तू विलम्ब से आता है तभी मुझे रोना आ जाता है, क्या करूँ ?

प्रकाशचन्द्र : (लेटे-लेटे माँ के गले में हाथ डालकर) यद्यपि मैं यह मानता हूँ, माँ, कि जिसकी आँखो को कभी-कभी आँसू नही धोते उसकी दृष्टि मैली रहती है, तथापि तेरे आँसू तो सदा ही तेरी आँखो को धोया करते हैं, अत उनकी रगड से तप-तपकर तेरे नेत्र लाल से बने रहते हैं, यह तो बडी भयानक बात है।

तारा · फिर मैं करूँ क्या ? जब तू देर से आता है तभी मुझे शका होने लगती है कि तुझ पर कोई आपत्ति तो नही आ गयी ?

प्रकाशचन्द्र पर, माँ, अब मैं बडा हो गया। तुझसे कितना ऊँचा हूँ फिर तू मेरे लिए इतना क्यो डरती है ? उषा की गोद के बाल-रवि को समय पाकर जिस प्रकार उस गोद की रक्षा की आवश्यकता नही रहती, उसी प्रकार अब तेरा बाल-प्रकाश भी बडा हो गया है।

तारा · तब तो, बेटा, मेरी तुझको कोई आवश्यकता ही नही रही ?

प्रकाशचन्द्र · (तारा के मुख को देखते हुए) नही, नही, माँ,

यह तू क्या कहती है ? तेरी आवश्यकता ? तेरी आवश्यकता तो मुझे सोते-जागते, उठते-बैठते, घूमते और सभी समय रहती है। तू मेरे हृदय मे न रहे तो क्या मेरा एक क्षण भी सुख से बीत सकता है ?

तारा : ऐसी बात !

प्रकाशचन्द्र : इसमे कोई सन्देह है ? पर, मेरे लिए तुझे चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। तेरी आवश्यकता, माँ, तेरी आवश्यकता ? आह ! तेरे बिना सुख कहाँ है ? बाल-रवि को जो सच्चा सुख उषा की गोद में मिलता है, वह क्या उस कर्तव्य मे मिल सकता है जो उसे दिवस मे करना पडता है ? उस समय तो वह स्वय जला-सा जाता है, पर कर्तव्य न करना तो ठीक नही, यदि यही होता तो गाँव से यहाँ आने की आवश्यकता ही क्या थी ?

तारा : क्यो, बेटा, यहाँ कैसा लगता है ?

प्रकाशचन्द्र : यहाँ माँ ? सारा वृत्तान्त बताता हूँ। (गोद से उठते हुए) जब यहाँ आया और गाँव के स्थान पर यह बडा भारी नगर देखा, तब यह कैसी वस्तु है, यही समझ में न आया। उथल-पुथल होने पर कोई वस्तु जैसी दिखायी देती है, वैसा यह नगर दिखायी दिया, यहाँ कोई व्यवस्था ही नही दिखी। एक मार्ग से निकल जाता और दूसरे पर चलता, तब प्रथम मार्ग मे क्या देखा, इसका स्मरण ही न रहता।

तारा : ठहर, मैं अभी आयी। (जाने लगती है।)

प्रकाशचन्द्र : पर, जाती कहाँ है ?

तारा (जाते-जाते) आती हूँ न।

[तारा चली जाती है। प्रकाशचन्द्र यहाँ-वहाँ टहलने लगता है। तारा का एक रकाबी में मिठाई आदि लिये हुए प्रवेश।]

प्रकाशचन्द्र . यह ले, ले आयी न मिठाई। मेरा खाना तो तेरी सबसे बडी कमजोरी है।

तारा · (मिठाई की रकाबी रखते और बैठते हुए) अच्छा, अब खाता जा और बाते भी करता जा।

[प्रकाशचन्द्र रकाबी के निकट बैठ जाता है।]

तारा : हाँ, तो पहले नगर मे तुझे कोई व्यवस्था ही न दिखती थी ?

प्रकाशचन्द्र . (मिठाई खाते हुए) बिल्कुल नही, पर, अब धीरे-धीरे परिवर्तन—भारी परिवर्तन-हो गया है। जिस मार्ग की कोई वस्तु स्मरण न रहती थी, उसी मार्ग की अब कई वस्तुएँ स्मरण रहने लगी हैं। इतना ही नही, उनमे अनेक विचित्रताएँ दिखती हैं, और जहाँ बडी से बडी वस्तु मेरा ध्यान आकर्षित न कर सकती थी, वहाँ अब छोटी से छोटी वस्तु भी अपना यथार्थ विशाल रूप मेरे सम्मुख प्रकट कर देती है। माँ, मैं यहाँ की हर वस्तु को बडे ध्यान से देखता हूँ।

तारा : और इस ध्यान मे बूढी माँ को ध्यान से निकालता जा रहा है, क्यो ?

प्रकाशचन्द्र किस बूढी माँ को ? तुझे, माँ ? (मुँह चलाना बन्द कर एकटक तारा की ओर देखते हुए) मेरी अच्छी

मां को, ससार मे सबसे अच्छी माँ को, इस दुखी माँ को (सिर हिलाते हुए) यह कभी हो सकता है ? कभी होने की बात है ? आह ! अभी मैंने तुझसे कहा न कि तेरे बिना तो क्षण-मात्र भी में नही जी सकता ।

तारा : खाना क्यो बन्द कर दिया, खाता तो जा ।

प्रकाशचन्द्र : (फिर मुँह चलाते हुए) यहाँ आकर तो तेरा हृदयस्थ रूप और विशाल हो गया है। पहले हृदय को थोडी सी वस्तुओं का अनुभव था अत. तेरा स्वरूप भी छोटा था, जैसे-जैसे अवलोकन और अनुभव की सीमा बढती जाती है, वैसे-वैसे तेरा स्वरूप भी विशाल होता जाता है ?

तारा : पर, बेटा, इस क्रिया मे न खाने का ठिकाना है न पीने का, देख तो गाँव से आने के पश्चात् तू कितना दुबला हो गया है ।

प्रकाशचन्द्र : अब मेरी आत्मा सबल हो गयी है और (अपने शरीर को देखते हुए) शरीर से भी दुबला तो नही हूँ । फिर, मेरे खाने की तू चिन्ता भी न किया कर, कई मित्र मुझे अच्छी-अच्छी वस्तुएँ खिला देते हैं, मैं भूखा कभी नही रहता ।

तारा : क्यो बेटा, नगर के मित्रों के यहाँ का खाना बूढी माँ के हाथ के खाने से अधिक अच्छा लगता है ?

प्रकाशचन्द्र : (मुँह बन्द कर एकटक तारा के हाथों की ओर

देखते हुए) इन हाथो के खाने से, माँ, इन हाथो के खाने से ? सच्चा खाना तो यहाँ है। वह तो कर्तव्य-पथ के पथिक का चलता हुआ आहार है, जैसे युद्ध के समय घोडे की पीठ पर सैनिक का भोजन, समझी ? अब कौनसा भोजन अधिक अच्छा है, इन हाथो का अथवा कर्तव्य-पथ का ? देख, माँ, आज मैं तुझे सारी बाते समझा दूँ।

तारा · पर खाना फिर क्यो बन्द कर दिया, खाता भी तो जा।

प्रकाशचन्द्र : (मिठाई खाते हुए) अच्छा, अच्छा, खाता भी जाता हूँ। देख, गाँव और नगर के जीवन मे आकाश-पाताल और रात-दिन का मैंने अन्तर पाया है, यह अन्तर केवल दो शब्दो में कहा जा सकता है।

तारा किन दो शब्दो मे, बेटा ?

प्रकाशचन्द्र : ग्रामीण जीवन स्वाभाविक और नगर का जीवन अस्वाभाविक है। छोटी-छोटी पहाडियो से घिरे हुए वे गाँव, ऊँचे-ऊँचे वृक्षो की छाया मे बने हुए नन्हे-नन्हे वहाँ के झोपडे, शान्त, नीरव और सकरी-सकरी वीथियाँ, खिले हुए कमलों से भरे हुए निर्मल सरोवर, कल-कल करते हुए नाले, आम के बगीचे, हरे-भरे खेत, घुटनो तक चढी हुई धोती और सफेद मिरजई पहने हुए पुरुष, मोटी-मोटी लाल-लाल साड़ी पहनी हुई स्त्रियाँ, नगे और धूल मे खेलते हुए बालक, गाय, बैल और भैंस-भैंसे तथा उनके गले मे टन्न-टन बजनेवाली घटियाँ, सब स्वाभाविक, अत्यन्त स्वाभाविक वस्तुएँ हैं। जान पड़ता है, प्रकृति देवी की गोद मे भी वस्तुएँ खेल रही हो और उन सब

बीच, माँ, तेरी शोकमयी यह मूर्ति ! आह ! क्या कहूँ ? (इधर-उधर देखकर) पानी तो है ही नही ।

तारा : अभी लायी।

[जाती है और पानी का ग्लास लेकर आती है। प्रकाश-चन्द्र ग्लास उठाकर थोड़ा सा पानी पीता है।]

तारा : अच्छा, आगे ?

प्रकाशचन्द्र : (फिर मिठाई खाते हुए) गाँव से नगर का जीवन ठीक विपरीत है ।

तारा : कैसा ?

प्रकाशचन्द्र : वृक्षो की ऊँचाई पर, सिर उठाकर हँसती हुई, उनसे कही ऊँची गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ, जन-समूह से भरे हुए कोलाहलपूर्ण मार्ग, चित्र-विचित्र उद्यान, ऊँची-ऊँची चिमनियोंवाले कारखाने, उनमे घरर-घरर चलने वाली कले और इन कारखानो के धुएँ से आच्छादित आकाश, अनेक प्रकार की वेश-भूषा वाले पुरुष और स्त्रियाँ, कपड़ो से गुड्डे वनाये हुए वच्चे, और गाय, बैल तथा भैंस-भैंसो की घंटियो के स्थान पर मोटरो के वजते हुए बिगुल । ओह ! मानो यहाँ पर प्रकृति देवी की छाती पर चढकर मनुष्य सब कुछ कर रहा हो ।

तारा : कौन जीवन अच्छा है, वेटा ?

प्रकाशचन्द्र : अच्छे से तेरा क्या अभिप्राय है ? ससार में स्वाभाविक और अस्वाभाविक दोनों ही वस्तुएँ अच्छी और दोनो ही बुरी हो सकती हैं। यह तो दृष्टिकोण का विषय है ।

तारा : सो कैसे ?

प्रकाशचन्द्र : गाँव मे मैंने सूर्योदय और सूर्यास्त, वर्षा और चाँदनी, नदियो और सरोवरो, पर्वतो और गुहाओ के वडे-वडे सुन्दर दृश्य देखे, और यहाँ के अजायबघर मे उनके चित्र। गाँवो के उन विशाल स्वाभाविक दृश्यो मे मै व्यवस्थित सौदर्य को न देख सका था, पर उन्ही के इन चित्रो मे मैंने उन स्वाभाविक दृश्यो का व्यवस्थित सौंदर्य देखा। मुझे ये चित्र उन दृश्यो से कही अधिक सुन्दर दृष्टिगोचर हुए। अब किसे सुन्दर कहा जाय, माँ ? उन स्वाभाविक दृश्यो को अथवा चित्रो को ?

तारा : तू ही वता ?

प्रकाशचन्द्र : सच तो यह है कि वह ईश्वरी कृति है और ये चित्र मनुष्य की। उस विशाल कृति के व्यवस्थित सौदर्य को देखने के लिए, मेरे छोटे-छोटे चर्म-चक्षु यथेष्ट नही हैं, जो इन चित्रो के द्वारा, उनमे व्यवस्था देख सकते हैं।

तारा : वेटा, तू तो नगर मे आकर कुछ ही समय मे वडा विद्वान् बन गया।

प्रकाशचन्द्र : (मुँह चलाना वन्द कर गम्भीरता से) विद्वान् वन गया, माँ, अथवा सच्ची विद्या भूलता जाता हूँ, कह नही सकता। इतना कह सकता हूँ कि जव से अनुभव हुआ है तव से जीवन जिस पथ पर चल रहा था, उससे यह पथ ठीक विपरीत है।

तारा : फिर खाना वन्द कर दिया।

प्रकाशचन्द्र : (मुँह चलाते हुए) वहाँ स्वाभाविक और निर्द्वन्द्व

ग्राम्य जीवन मे, माँ, तेरी शोकमयी प्रतिमा का निरन्तर शांत एव नीरव संग था, और यहाँ नगर के अस्वाभाविक, अप्राकृतिक और जकड़े हुए जीवन मे शनै शनै तुझ से दूर, बहुत दूर जाते हुए, अशान्त एवं कोलाहलपूर्ण मित्र-मडली का सहवास है।

तारा : तभी तो कहती हूँ बेटा, अब तेरे मन से मेरा ध्यान ही दूर होता जा रहा है।

प्रकाशचन्द्र . (फिर मुँह चलाना बन्द कर) यह न कह, माँ, यह न कह। संग और ध्यान मे अन्तर, महान् अन्तर है। मै प्रति क्षण उसका अनुभव करता हूँ। वहाँ तेरा शात और नीरव सग रहता था, पर ध्यान में, तेरे वर्णन किये हुए नगर के अनेक दृश्यों की कल्पना रहती थी।

तारा : और खाना इस समय किस कल्पना में बन्द है?

प्रकाशचन्द्र : (मुस्कराकर फिर मिठाई उठाकर खाते हुए) यहाँ, माँ, संग अशान्त और कोलाहलपूर्ण मित्र-मडली का है, परन्तु ध्यान तेरी शोकमयी प्रतिमा का रहता है। ध्यान से दूर तू कभी जा ही नही सकती, माँ, कभी नही जा सकती, वरन् जब से यहाँ आया हूँ तब से तू ध्यान के अधिकाधिक निकट आती-जाती है, यह कहूँ तो और भी उपयुक्त होगा कि तू ध्यानमय ही बनती जाती है।

तारा : बेटा, बेटा, तू कैसी बातें करता हे? पागल तो नही हो गया है?

प्रकाशचन्द्र : नही, माँ, नही, पागल कैसा? यहाँ आकर तो मै अब तक की तेरे द्वारा दी गयी शिक्षा का अनुभव

करने लगा हूँ, अपनी शक्ति पहचानने लगा हूँ, जानने लगा हूँ, कि मेरा कार्य-क्षेत्र कितना विस्तीर्ण है और मुझे कितना भारी कार्य करना है। इसका केवल अनुभव ही नही किया है, माँ, कृति का आरम्भ भी कर दिया है। ज्ञान और कृति का सयोग हो गया है। आज ही का वृत्तान्त बताता हूँ। (पानी पीकर ग्लास रख देता है और रकाबी से कुछ हटकर बैठ जाता है।)

तारा : आज क्या हुआ, बेटा ?

प्रकाशचन्द्र : आज मै कन्हैयालाल के साथ राजा अजयसिंह के यहाँ भोज मे गया था।

तारा : (कुछ चौंककर) अच्छा, वहाँ क्या हुआ ?

प्रकाशचन्द्र : भोज गवर्नर को दिया गया था। मिठाई, फलो और मदिरा की भरमार थी।

तारा : (जल्दी से) और तूने भी खाया तथा मदिरा भी पी, क्यो ?

प्रकाशचन्द्र : कुछ छुआ भी नही, माँ, सुन तो पूरा वृत्तान्त कि क्या हुआ।

तारा : अच्छा, कह।

प्रकाशचन्द्र : उस भोज मे सब लोग बडे अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनकर आये थे, स्त्रियाँ तो तितली बनकर आयी थीं, तितली। अस्वाभाविकता का पूर्ण साम्राज्य था। धनिको के बैठने के लिए अलग और निर्धनो के बैठने के लिए अलग स्थान था। मै निर्धनो के स्थान की ओर भेजा गया।

तारा : (त्योरी चढ़ाकर) तू निर्लज्ज होकर वहाँ बैठ भी गया, क्यो ?

प्रकाशचन्द्र : तेरा पुत्र होकर, ससार मे सबसे अच्छी माँ का पुत्र होकर, निर्धन हुआ तो क्या ? यह कभी हो सकता था ?

तारा : तब क्या किया, बेटा ?

प्रकाशचन्द्र : वही तो बताता हूँ; सुन न। मै वहाँ न बैठा, एक टेबिल पर चढ धनी और निर्धनो, पठित और अपठितो पर भाषण दे डाला। जो मन मे आया निर्भय होकर कहा। मै जानता ही न था कि मै इतना अच्छा, पुस्तक के समान, बोल सकता हूँ। मुझे स्वय अपना भाषण कैसा जान पडता था, जानती है ?

तारा : कैसा, बेटा ?

प्रकाशचन्द्र : दूसरे से तो न कहूँगा, क्योकि वह आत्म-प्रशसा होगी, पर तुझ से तो सभी कुछ कह सकता हूँ।

तारा : इसमे कोई सन्देह है ?

प्रकाशचन्द्र : मुझे अपना भाषण, माँ, आँधी के समान जान पडता था और उसके बीच-बीच मे जो कानाफूसी होती थी वह पत्तियो की खडखड़ाहट के सदृश।

तारा : इस भाषण का फल क्या हुआ ?

प्रकाशचन्द्र : बडा अच्छा, जो चाहता था वही हुआ। तूने मुझे महात्मा गाधी के असहयोग का वृत्तान्त बताया था न ?

तारा : हाँ।

प्रकाशचन्द्र : बस, मैने यहाँ के निर्धनों को, धनवानो के इस भोज से; असहयोग करने को कहा।

तारा : तब ?

प्रकाशचन्द्र : लोगो ने तत्काल मेरा कहना मान लिया और अजयसिंह आदि सबके रहते हुए, अधिकाश भाई, मत्र-मुग्ध की भाँति मेरे पीछे हो लिये ।

तारा : (जल्दी से) प्रकाश, हम इसी समय गाँव को लौटेंगे, नगर मे हम न ठहरेंगे ।

प्रकाशचन्द्र यह तो अब नही हो सकता ।

तारा क्यो ?

प्रकाशचन्द्र : यहाँ तो अब बहुत काम करना है । अनुभव का कार्य प्राय समाप्त हो चुका है, अब उस अनुभव को कार्य-रूप मे परिणत करने का काम आज आरम्भ हुआ है । (एकटक तारा की ओर देखते हुए) मुझे तो आज यह भासता है, (कुछ रुककर) दूसरे से यह भी न कहूँगा, पर तुझसे तो अवश्य · ·· ।

तारा : हाँ, हाँ, कह, कह, क्या भासता है ?

प्रकाशचन्द्र: यह भासता है, माँ, कि मै मूक जनता का सच्चा शब्द, अध जनता के सच्चे नेत्र, पगु जनता के सच्चे पैर और अकर्मण्य जनता के सच्चे हाथ हूँ । और एक बात है, उस जनता का हृदय तू है, माँ, और तेरी शोकमयी प्रतिमा मेरे हृदय मे ·· ·· ।

तारा : यह तो कविता हुई, पर करेगा क्या, यह तो बता ?

प्रकाशचन्द्र : वही तो बताता हूँ । अजयसिंह के उद्यान से लौटकर हम सभी लौटे हुए लोगो ने एक सत्य-समाज का सगठन किया है । उसका सभापति तेरा प्रकाश बनाया

गया है। सत्य को ससार के सम्मुख रखना इस समाज का कार्य है। ग्राम और नगर-वासियो के सुख-दु ख का एक दूसरे को सत्य अनुभव हो तथा उस सत्य अनुभव के पश्चात् सत्य-मार्गो-द्वारा ग्राम और नगर-निवासियों के दुखों का परिमार्जन किया जाय, तभी संसार मे सत्य-वस्तु की स्थिति और सत्य-सुख की स्थापना हो सकती है। इस खाई पर पुल बाँधने से ही समाज पार लग सकता है। महात्मा गाधी के सन् २० के असहयोग और सन् ३० के सत्याग्रह आन्दोलन के पूर्व यह कार्य आवश्यक था। इसके न होने के कारण ही ये आन्दोलन असफल हो गये। सत्य-समाज यही कार्य करेगा।

तारा : और इस कार्य का आरम्भ किस प्रकार होगा ?

प्रकाशचन्द्र . कल रविवार को सध्या समय यहाँ एक सार्व-जनिक सभा होगी, जिसमे वर्तमान परिस्थिति और सत्य-समाज के उद्देश्यो का दिग्दर्शन कराया जायगा। फिर अजयसिंह के गाँवों में कार्य आरम्भ होगा, क्योकि वहाँ एक नहर बननेवाली है। सुना है, मूक जनता के नाम पर इससे कुछ लोग अपना निजी लाभ उठाना चाहते हैं और इसमे पानी तक यथेष्ट न आवेगा।

तारा : (घबड़ाकर) आह ! तू नही जानता कि तू क्या कर रहा है, बेटा, (कुछ ठहरकर) अच्छा, अभी तो चलकर हाथ धो।

प्रकाशचन्द्र : पर, माँ, तू तो आज बहुत घबड़ायी! मैंने तुझे

इतना घबड़ाते कभी नहीं देखा ! (उठते हुए) तेरी ही शिक्षाओं को तो मैं अब कार्य-रूप मे परिणत कर रहा हूँ। तुझे तो इससे उल्टा आनन्द होना चाहिए।

[तारा प्रकाशचन्द्र की जूठी रकाबी और ग्लास उठाती है। दोनो का प्रस्थान। परदा उठता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान : रानी कल्याणी का कमरा

समय : प्रात काल

[कमरे के तीन ओर दीवालें हैं, जिनमें कई दरवाज़े और खिड़कियाँ है। दीवालें और छत, दरवाज़े और खिड़कियाँ पीले तैल-रंग से रंगे है। दरवाज़ो और खिड़कियो के किवाड़ों में काँच लगे है, जिन पर बेल-बूटे हैं। कुछ दरवाज़े और खिड़कियाँ खुले है और कुछ बन्द। खुले हुए दरवाज़े और खिड़कियो से प्रातःकाल के प्रकाश से चमकता हुआ आकाश और पर्वत-मालाएँ दिखती हैं जिससे जान पड़ता है कि यह कमरा दुमंजिले पर है। दरवाज़े और खिड़कियों के आस-पास दीवाल पर बड़ी-बड़ी तसवीरें और शीशे लगे हैं। दरवाज़ों और खिड़कियो के गोलम्बरो में पीले काँच के गोले लगे है और पीले रंग से रंगे महराबदार परदे पड़े है। छत में पीले ही झाड़-फन्नूस टँगे हैं। ज़मीन पर पीले रंग की ज़मीन का बेल-बूटेदार फ़ारस देश का कालीन बिछा है। एक तकिये के सहारे रानी कल्याणी अपनी साधारण वेश-भूषा में बैठी कुछ सीं रही है। रुक्मिणी का अपनी साधारण वेश-भूषा में जूते पहने हुए एक दरवाज़े से प्रवेश।]

रुक्मिणी : (आगे बढ़ते हुए) रानी साहबा का अभिवादन करती हूं।

कल्याणी : (रुक्मिणी को देख, खड़े होकर) आहा ! तुम हो रुक्मिणीजी, आओ।

रुक्मिणी · (आगे बढ़, फिर पीछे हटकर) क्षमा कीजिए रानी साहबा, सदा के अभ्यास के अनुसार जूते ले आयी, याद ही नही रहा कि भीतर जूते नही आते। यही उतार दूँ तो कोई हर्ज तो न होगा न ? (जूते उतारकर आगे बढती है।)

कल्याणी : कुछ नही बहन, आजकल तो जूता सबसे पवित्र वस्तु हो गयी है। (रुक्मिणी का हाथ पकड बैठाते हुए) अच्छा बैठो। कहो, अच्छी तो हो ? विलायत अच्छी प्रकार घूमी न ? इतने दिन लौटे भी हुए, किन्तु मेरे पास तो आज आयी हो।

रुक्मिणी (खडे-खडे) क्या कहूँ, रानी साहबा, यहां आते ही इतने सार्वजनिक कार्य लग गये कि क्षण भर का भी अवकाश नही मिलता। लेडीज़-एसोसिएशन के बढते हुए कार्य का सवाद तो आपने सुना ही होगा ? आज बडी मुश्किल से अवकाश निकालकर आयी हूँ। कल के भोज मे जो गडबडी हुई उसी पर सहानुभूति प्रदर्शित करनी थी?

कल्याणी : उँह, यह सब तो हुआ ही करता है; पर बैठो तो, तुम से तो बहुत बातें करनी हैं, खडी कहां तक रहोगी ?

रुक्मिणी : क्षमा कीजिए, रानी साहबा, विलायत से लौटने के

बाद मैंने जमीन पर बैठना छोड़ दिया है, क्योंकि जब तक भारतवासी वर्तमान सभ्यता के अनुसार सभ्य न होंगे तब तक उनका उत्थान नहीं हो सकता; और मनुष्य जैसा दूसरों को बनाना चाहे, पहले खुद को बनाना चाहिए। जूते तो आपके संकोच से उतार दिये, पर, क्या कुर्सी भी न मिलेगी ?

कल्याणी : (मुस्कराकर) सच तो है, हम लोगों का संकोच तो अब जूतों ही में रह गया है। अभी लो, मैं अभी कुर्सी मँगवाती हूँ। (ज़ोर से) रमा ! रमा !

[स्वच्छ वस्त्र पहने बूढ़ी दासी रमा का प्रवेश।]

कल्याणी : एक कुर्सी तो जल्दी ले आ।

रमा : जो आज्ञा रानी साहबा।

[जाती है, गद्देदार कुर्सी लाती है, रखकर फिर जाती है। रुक्मिणी कुर्सी पर और कल्याणी जमीन पर बैठती हैं।]

कल्याणी : (बैठकर) अच्छा, अब कहो, कुछ विलायत का वृत्तान्त तो सुनाओ, कैसा स्थान है, कैसा समाज है, कैसे दिन कटे ?

रुक्मिणी : बहुत अच्छे दिन कटे, रानी साहबा। विलायत का क्या पूछना है ? वहाँ की और इस देश की क्या तुलना हो सकती है ? वहाँ का राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक सभी जीवन आगे बढ़ा हुआ है। द्रव्य का तो वह देश समुद्र है तथा सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र। धर्म के झूठे ढकोसले वहाँ नहीं हैं। पुरुष और स्त्री-समाज दोनों

ही उन्नत, महान् उन्नत हैं। दोनो को पूर्ण स्वतन्त्रता है। यहाँ के सदृश पुरुषो का स्त्रियो पर भीषण अत्याचार नही है। सुख-सामग्री की विपुलता है, उसका उपभोग स्त्री और पुरुष समान रूप से करते हैं। विलायत के सदृश होने मे इस देश को सदियाँ लगेंगी, रानी साहबा।

कल्याणी : और इसी का उद्योग तुम्हारा लेडीज-एसोसिएशन कर रहा है, क्यो ?

रुक्मिणी : अवश्य।

कल्याणी : यहाँ की सब स्त्रियों को तुम लोग विलायत के सदृश ही बनाना चाहती हो ?

रुक्मिणी : और सुधार का रास्ता ही क्या है ? वह देश आज ससार का आदर्श देश है और उसी के अनुकरण से भारत का उद्धार हो सकता है।

कल्याणी : पर, रुक्मिणीजी, मनमानी वेश-भूषा किये, हर प्रकार की स्वतन्त्रता लिये, स्त्रियो का पुरुष-समाज मे फुदकते फिरना, जूते उतारने मे सकोच करना, जमीन पर बैठने मे घृणा करना, इन सब बातो से ही क्या इस देश का स्त्री-समाज उन्नत हो जायगा ?

रुक्मिणी : (उत्तेजित होकर) यह तो आप व्यक्तिगत अपमान करने पर उतारू हो गयी।

कल्याणी : (आश्चर्य से) कभी नही, रुक्मिणीजी, यदि तुमने मेरे कथन का यह अभिप्राय समझा है, तब तो मुझे बडा खेद है।

रुक्मिणी : (और भी उत्तेजित होकर) क्यों ? पुरुष-समाज मे मनमानी वेश-भूषा किये हुए फुदकते फिरना, जूते उतारने मे संकोच करना, जमीन पर बैठने मे घृणा करना, यह सब तो स्पष्ट रूप से मुझ पर ही कहा गया, मेरा अपमान किया गया।

कल्याणी : क्या तुम्ही ऐसा करती हो, और कोई स्त्री ऐसा नही करती ? मै तो देखती हूँ, आजकल की पढी-लिखी अधिकांश स्त्रियाँ यही करती हैं।

रुक्मिणी : (अत्यन्त उत्तेजित होकर) नही, नही, रानी साहबा आपने मेरा अपमान किया है। यह अपमान आपने अपने घर के भीतर किया है। मै आपसे स्वय मिलने आयी उस वक्त किया है। आपके भावो का आदर करने के लिए, अपने अभ्यास के विरुद्ध, मैने जूते उतार दिये, तब भी आपने मेरा अपमान किया है। आपको समझ लेना चाहिए कि आप लोग हमारे कर्जदार हैं और हम चाहे तो एक दिन मे आपका यह सारा वैभव मिट्टी मे मिला सकते हैं।

कल्याणी : (मुस्कराते हुए) इसी बिरते पर आप समाज का सुधार करेंगी, रुक्मिणीजी ? इतनी व्यक्तिगत बाते ! दूसरों का सुधार करने के पहले अपना और अपने-अपने घर का सुधार करना अधिक ठीक होगा।

मणी : (क्रोध से, उठकर ओठो को दाँतो से काटकर) फिर अपमान, अपमान पर अपमान, इसका फल अच्छा न होगा। याद रखना, मै एक क्षण मे तुम्हारी सारी सम्पत्ति और महलो को, तुम्हारे सारे आभूषण और वस्त्रों को

नीलाम करा सकती हूँ। तुम्हारे सारे वश को और तुमको जगल मे मारे-मारे भटकवा सकती हूँ। तुम किस घमण्ड मे भूली हो, रानी ?

कल्याणी : (शांति से मुस्कराते हुए) ओह ! रुक्मिणीजी, क्या कह रही हो ? यही सभ्यता है ? यही सस्कृति है ? यही आप विलायत से सीखकर आयी हैं ? यही इस देश के स्त्री-समाज को सिखायेगी ? यही आपका लेडीज-ऐसोसिएशन कर रहा है ? रुक्मिणीजी, मुझे आप पर बडा खेद होता है, दया आती है।

रुक्मिणी : (अत्यन्त क्रोध से) इस खेद और दया का बहुत जल्दी फल मिलेगा, कल्याणी।

[कल्याणी जोर से हँस पड़ती है। रुक्मिणी का क्रोध से काँपते हुए शीघ्रता से प्रस्थान। परदा गिरता है।]

छठवाँ दृश्य

स्थान : डाक्टर नेस्टफील्ड के बँगले का बरामदा

समय प्रात काल

[बरामदे के पीछे की दीवाल और उसके दोनो ओर के खम्भे दिखायी देते है। दीवाल और खम्भे सफेद कलई से पुते है। एक ओर से नेस्टफील्ड और दूसरी ओर से थेरिजा का साधारण अँगरेजी वस्त्रो मे प्रवेश।]

थेरिजा : हलो, अकिल, मै तो तुम्हारे ही पास आ रही थी।

नेस्टफ़ील्ड : और मैं तुम्हारे पास आ रहा था, थेरिजा।

थेरिजा : खैर, अच्छा ही हुआ। अब ब्रेकफास्ट यही मँगा लेती हूँ। यही सुबह की हवा में खायँगे और बातें होती रहेंगी।

नेस्टफील्ड : अच्छी बात है।

[थेरिजा का प्रस्थान। नेस्टफील्ड इधर-उधर घूमता है। थेरिजा का वर्दी पहने हुए, दो ख़ानसामो के साथ प्रवेश। एक ख़ानसामा एक हाथ में दो टूटदार (फोल्डिग) कुर्सियाँ और दूसरे में एक टूटदार (फोल्डिग) टेबिल लिये तथा बगल में टेबिल-क्लाथ दबाये है। वह टेबिल-कुर्सी लगाता है और टेबिल पर कपड़ा बिछाता है। दूसरे के हाथ में चीनी के बर्तनो में खाने का सामान हैं। वह उसे टेबिल पर रखता है। नेस्टफील्ड

और थेरिजा कुर्सियो पर बैठ जाते है और खानसामे जाते हैं।]

थेरिजा : कहो, कल फिर राजा से क्या बाते हुई ?

नेस्टफील्ड : (छुरी से रोटी काटते हुए) तुम जानती हो, वह अव्वल नम्बर का बुजदिल है।

थेरिजा : इसमें कोई शक है ?

नेस्टफ़ील्ड : कल के वाकया से वह बहुत घबरा गया है और मैंने अच्छा मौका देखकर एक नया जाल फैला दिया। (कटी हुई रोटी थेरिजा के प्लेट में रखता है।)

थेरिजा : (मक्खन लगा रोटी खाते हुए) कैसा, अकिल ?

नेस्टफील्ड : (मक्खन लगाकर रोटी खाते हुए) मैंने उसे समझाया कि अभी तो और गडबडी होगी। कन्हैयालाल जब अपने पेपर मे यह सब हाल लिखेगा तब ऑफिसर और भी नाराज होगे, शायद यह भी समझ ले कि आपने ही यह सब कराया है। (छुरी से आमलेट काटकर खाता है।)

थेरिजा : (हँसकर) वैल अकिल, वैल अकिल, व्हॉट ए फरटाइल हेड! व्हॉट ए फाइन थिंग! व्हॉट ए फाइन प्लॉट! (कुछ ठहरकर) और राजा ने इसे मान लिया होगा ? (वह भी आमलेट खाती है।)

नेस्टफ़ील्ड : सिर्फ मान ही नही लिया, उसने मुझे कन्हैयालाल से बातचीत करने को भी कहा है।

थेरिजा : अब क्या करोगे ?

नेस्टफील्ड : कुछ नही, बिल्कुल सीधा रास्ता है। तुम जानती

ही हो कि राजा मुकाबिले में तो किसी से बात करता नही।

थेरिजा : हाँ।

नेस्टफ़ील्ड : बस, राजा से कहूँगा कि कन्हैयालाल दो हजार माँगता है। कन्हैयालाल से मिलकर दो-अढ़ाई-सौ उसे टिकाऊँगा और कह दूँगा, कुछ न छापे। तुम जानती ही हो कि आजकल की एडिटोरियल-कलम काली स्याही से न लिखकर चांदी की सफेदी से लिखती है; (मुँह भोजन से भर जाने से कुछ रुककर) जहाँ रुपया दिया कि कुछ भी लिखवा लो या कुछ लिखा जाता हो तो बन्द करा लो। ये सत्रह-अठारह सौ बच जायँगे।

थेरिजा : वैल अकिल, वैल अकिल, व्हॉट ए फरटाइल हेड ! व्हॉट ए फाइन थिंग ! व्हॉट ए फाइन प्लॉट !

नेस्टफ़ील्ड : थेरिजा, आजकल कानूनी पेशे मे इसी तरह की चीजो की आमदनी रह गयी है। लिटीगेशन घट गया है, कापिटीशन दिन-दूना बढता जाता है, कमीशन पर कमीशन दो तब कही मुकदमे मिलते हैं, या जब मिलते हैं तब यह जाहिर कराया जाय कि मेरी फलाँ मजिस्ट्रेट या जज से दोस्ती है।

थेरिजा : यह बात पूरी तौर पर जाहिर करने के लिए उस मजिस्ट्रेट या जज के यहाँ बराबर जाना पड़ता है या उसे ही टी-पार्टी वगैरह के लिए बुलाना पड़ता है।

नेस्टफ़ील्ड : तुम्हीं देखो न, अपने यहाँ रोज ही मजिस्ट्रेटों और जजो का आना-जाना लगा रहता है।

थेरिजा : और, अकिल, इसमे तो कुछ खर्च भी होता है।

नेस्टफोल्ड : विना खर्च के नकद आमदनी तो तभी होती है, जब या तो कोई मोटी मुर्गी फँसे, या दोनो पार्टियो से मिलकर खाया जाय, या कोई इसी तरह की दूसरी साज़िश की जाय।

थेरिजा : इसमे क्या शक है, अकिल।

नेस्टफ़ील्ड : और, थेरिजा, जो दामोदरदास कहता है, वही ठीक है, सारी दुनिया पर पैसा हुकूमत करता है, जो हमेशा थोडे से आदमियो के पास रहा है और इसी तरह आगे भी थोडे से आदमियो के पास ही रहेगा। दुनिया का ड्रामा, चाँदी और सोने के स्टेज पर खेला जा रहा है।

थेरिजा : सच है, अकिल।

नेस्टफील्ड : या तो इन थोडे से आदमियो के मुआफिक खुद बनना या इन्हे हाथ मे रखना, यही दुनिया की सबसे वडी कामयावी है। पर जितना इन पुराने मेढक-रईसो को ठगना आसान है, उतना इन नये रोजगारियो को नही। इनकी चावी तो वस तुम्ही लोग हो। इस शहर मे दो ही खानदान सब कुछ हैं, (खाने से मुँह भर जाने से रुककर) राजा अजयसिह का और सर भगवानदास का। अजयसिह का खानदान गिरती हालत मे है और भगवान-दास का वढती। गिरते हुए खानदानो से उनके कई डरो के सवव आमदनी होती है और बढते हुए खानदानो से उनके नये-नये कामो की वजह से।

थेरिजा : हाँ, तुम कानूनी पेशे वालो को तो दोनो से ही फायदा है।

नेस्टफील्ड : इसमें कोई शक नही, पर होशियारी होनी चाहिए।

थेरिजा : बिना होशियारी के तो क्या हो सकता है ?

नेस्टफ़ील्ड : अजयसिह को तो मैं हाथ मे रखे ही हूँ और दामोदरदास को तुम रखो। उस तोतले भगवानदास मे क्या रखा है, जो कुछ है दामोदरदास है, उसी के सबब यह नाइट हुआ।

थेरिजा : दामोदरदास की तुम फिक्र छोड दो, अकिल, वह बिल्कुल मेरे हाथ मे है। उस खानदान मे तो एक मनोरमा ही अजीब चीज़ पैदा हुई है।

नेस्टफील्ड : (बेपरवाही से) उँह ! उसकी परवाह ही न करनी चाहिए, फूलिश गर्ल ! और देखो, थेरिजा, सैक्स मुरैलिटी वगैरह को ताक मे रखना इस ज़माने की सच्ची जरुरत है। अगर इस मुरैलिटी की तह में जाकर देखा भी जाय तो क्या है ? कुछ नही।

थेरिजा : बिल्कुल फिजूल की चीज है।

नेस्टफील्ड : शादी के मामले पर आजकल योरप और अमेरिका मे वहाँ के पढे-लिखे लोग, वहाँ के थिंकर्स, क्या-क्या लिख रहे हैं, देखती नही ? हम लोग तो क्रिश्चियन हैं, वही के उसूलो के मुताबिक चलेगे।

थेरिजा : बिल्कुल ठीक, नही तो क्या हिन्दू-मुसलमानो के उसूलो के माफिक चलेंगे ?

नेस्टफील्ड : योरप और अमेरिका मे कई लोगो का कहना है कि शादी करना ही गलत बात है। कई कहते हैं, प्रॉस्टी-ट्यूशन और शादी मे फर्क ही क्या है ? मामूली प्रॉस्टी-ट्यूशन मे औरत कुछ देर को अपना जिस्म आदमी के हाथ बेचती है और शादी मे हमेशा के लिए, सवाल वही है पैसा।

थेरिजा : जरूर, और, अकिल, अभी तो दुनिया मे न मालूम कितने रिफार्म होंगे ?

नेस्टफील्ड : इसमे क्या शक है, थेरिजा, पर सैक्स मुरैलिटी खत्म हो गयी, इसमे कम से कम कोई शक बाकी नही है, न सैक्स मुरैलिटी के कायम होने के लिए कोई रिफार्म ही हो सकता है।

थेरिजा : मैंने इस पर तुम्हारी दी हुई तमाम किताबो को पढ लिया है और मैं सारा मामला अच्छी तरह समझ गयी हूँ। तुम दामोदरदास की तरफ से बेफिक्र रहो। (जोर से) बैरा, सोडा। (नेस्टफील्ड से) बार-रूम का हाल बहुत दिन से तुमने नही बताया, अकिल ?

[एक खानसामे का रकाबी में दो ग्लासों में सोडा लेकर प्रवेश और दोनो ग्लास टेबिल पर रखकर प्रस्थान।]

नेस्टफील्ड : वैसा ही हाल है, कोई खास बात नही है। बार-रूम आजकल का सिविलाइज्ड मदकखाना है।

थेरिजा : उसे मदकखाना तो तुम हमेशा ही कहते थे।

नेस्टफील्ड : मदकखानो मे सबसे बडा मदकखाना। वहाँ का धंधा ही कुर्सी पर बैठे-बैठे या तो सिगरेट और सिगार

पीते हुए, या ताश खेलते हुए, दुनिया भर का क्रिटीसिज्म और हर एक की बुराई करना है। फिर वकील वहुत वढते जाते हैं। (सोडा का ग्लास उठाकर थोड़ा-थोड़ा पीते हुए) जैसा मैंने अभी कहा था कापिटीशन है, कमीशन का जोर है और भी तरह-तरह के करप्शन हैं। एक वात जरूर हुई है।

थेरिजा : क्या ?

नेस्टफ़ील्ड : वैरिस्टरो का अव उतना रोव-दाव नही रहा, जितना पहले था। दूसरे गाधी मूवमेण्ट के सवव वकीलो मे भी कुछ प्योरीटन हो गये हैं, पर वहुत कम, अभी भी कसरत राय हम लोगो की ही है।

थेरिजा : यह भी तुमने कई वार कहा। (कुछ ठहरकर) वार-एसोसिएशन के प्रेसीडेण्ट तो तुम ही रहोगे न ? (सोडा का ग्लास उठाकर पीती है।)

नेस्टफील्ड : (बेपरवाही से) जब तक मैं जीता हूँ तव तक वार एसोसिएशन की प्रेसीडेण्टी और पब्लिक प्रॉसीक्यूटरशिप कोई ले सकता है ?

थेरिजा : इनसे वडा असर रहता है, क्यो, अकिल ?

नेस्टफ़ील्ड : वहुत वडा; और फिर इन दो वड़े खानदानो के वकील होने से भी वडा भारी असर है। चाहे मेरी कानूनी लियाकत कैसी ही क्यो न हो, मामूली दर्जे के मवक्किलो और जजो तक पर इन वातो का वडा असर पड़ता है।

थेरिजा : हाँ, सिर्फ कानून ही नही, लेकिन असर भी आजकल

के इन्साफ के पलडे मे वज़न डाले विना नही रहा। (और सोडा पी, ग्लास खाली कर टेबिल पर रख देती है।)

नेस्टफील्ड : इसमे क्या शक है। (वह भी सोडा पीकर, ग्लास खाली कर, टेबिल पर रख देता है और जेब में से सिगार-केस तथा माचिस निकाल सिगार जलाता है। कुछ ठहर-कर) अच्छा, तो अब कचहरी का वक़्त हो रहा है।

थेरिजा : हाँ, अकिल, (हाथ की घडी देखकर) ग्यारह बजने मे पाँच मिनिट हैं।

नेस्टफील्ड : (आश्चर्य से) ग्यारह ?

थेरिजा : बात करने मे वक्त बहुत जल्दी निकल जाता है, अकिल।

नेस्टफील्ड : (चलते हुए) आज मेरी जरूरी अपील भी है।

थेरिजा : ग्यारह बजकर कुछ मिनिटो पर पहुँच जाओगे।

नेस्टफील्ड : (चलते-चलते कुछ बेपरवाही से) उँह, कुछ देर से भी पहुँचा तो जज रास्ता देखेगा। जजो का हाल जानती ही हो। (हँसता है।)

थेरिजा : (जोर से) बैरा लोग।

[दोनो खानसामो का प्रवेश।]

थेरिजा : वरण्डा साफ कर दो। (प्रस्थान।)

[एक खानसामा टेबिल और दूसरा दोनो कुर्सियो को उठा ले जाता है। परदा उठता है।]

सातवाँ दृश्य

स्थान सर भगवानदास का पूजा-घर

समय : प्रातःकाल

[पूजा-घर के तीनों ओर की दीवालें दिखायी देती हैं, जिन पर अनेक देवताओं के चित्र बने हैं। तीनों दीवालों के बीच में एक-एक दरवाज़ा है। तीनों दरवाजे खुले हैं जिनसे दूसरे सजे हुए कमरों का कुछ भाग दिखायी देता है। पूजा-घर के बीच में एक लकड़ी की चौकी पर आसन बिछाये, सोला पहने, उपरना ओढ़े, रामानंदी तिलक लगाये, पालथी मारे, भगवानदास बैठा है। सामने चाँदी के पटे पर चाँदी के पूजन के बर्तन रखे हैं।]

भगवानदास : (आँखें बन्द किये हुए ध्यान में) तस्तूरी तिलत ललात पतले बत्थथले तौस्तुभम्। नासाग्रे बर मौत्तित्त तरतले वेनु तरे ततनम्। सर्वान्दे हरि तन्दन सुललितम् तथेत्त मुत्तावली। दो पत्री परिवेत्तितो विदयते दोपाल तूरा मनी।

[लक्ष्मी का एक दरवाज़े से प्रवेश। लक्ष्मी लगभग साठ वर्ष की गेहुँए रंग की, अत्यन्त मोटी स्त्री है। मुख पर शीतला के चिह्न हैं। एक मोटी पीले रंग की साड़ी और लाल रंग की

चोली पहने है । सिर के अधिक बाल झड गये हैं, थोड़े-बहुत बचे हुए बालो को गोंद लगा, चिपकाकर ऊँछा है । मस्तक पर चमकती हुई बड़ी टिकली लगी है । कान के बड़े-बड़े छेदो में सोने के कर्णफूल लटक रहे हैं । नाक में सोने की बड़ी नथ है । गले में काँच के पोत की झालर लगी हुई सोने की हँसली है । हाथो में सोने के मोटे कड़े और लाख की मोटी-मोटी चार-चार चूड़ियाँ हैं । पैरो में चाँदी के मोटे-मोटे भद्दे आभूषण हैं ।]

लक्ष्मी : नासि होइ जाय तुम्हरी ढोंगी पूंजा केरि । यह बिटेवा अठारह बरस केरि होइ गै है, मुदा वियाहे क्यार अबै तक ठीकु नहिन । लरिका औरु पुतऊ किरिस्तान अस घूमति हैं । आँखी मूँदे ते इस्सुर तो जस देखि परा नहिने रहा-सहा जौनु धरमु रहै तौनो चापर होइगा ।

भगवानदास : (जिसने लक्ष्मी का शब्द सुनते ही आँखें खोल ली थीं, लक्ष्मी की ओर देखते हुए) तुम दुनियाँ तो समधती ही नही, दबरदस्ती लाल-लाल पीली-पीली आँथें लिए धूमती हो ।

लक्ष्मी : तोहिका औरु तोरी दुनियाँ का, दून्हन का समझि लीन ।

भगवानदास : त्या समध लीन । देथो, दामोदर थीत तहता है ति लरती ते ब्याव ती दल्दी ही त्या है, दब वी० ए० पास हो दायदी तब ब्याव हो दायदा, दहाँ ब्याव हुआ ति पधना-लिथना तौपत । अब रही पूदा ती वात, सो पूदा से लरता-वहू से त्या मतलव ? पूदा बेतुथ तो ले दायदी और लरता-वहू दुनियाँ मे आराम देते हैं । इतना ही तुम

समघ लो तो थाऊँ-थाऊँ तरती न घूमो ।

लक्ष्मी : एकु कती दुइ होइ सकत हैं, अरे एकुइ रही एकुइ ।

भगवानदास : (हाथ हिलाते हुए) दो नही हो सतता ? अरे, दो त्या, दिन भर मे दरूरत परे तो दस हो सतता है। रुददार-धधा मे और बदे-बदे रुददार-धधा मे एत-एत दिन मे, एत-एत आदमी सौ-सौ और हदार-हदार हो दाता है। तुम दोती बात तरती हो । फिर दामोदर और उस बहू ने बिदारा त्या है । धर मे लाथो रुपया बधा दिये, मुदे सर बनवा दिया और तुम्हे लेदी । उनता पूदा-ऊदा, धरम-तरम पर विसवास नही है । यह तो अपना-अपना विसबास थहरा और फिर अभी दवान आदमी हैं, दब-बूधे होयदे, प्राथित तर लेदे, हो दया । लेदी साहबा, आद दुनियाँ ऐसी ही तलती है । विना तिरस्तान हुए तुथ भी सफलता नही मिलती । दुनियाँ पर तिरस्तान ही राद तरते हैं और दब तत उनते माफित न हो दाओ तब तत भूथे मरो, भूथे । (थूक उछालता है ।)

लक्ष्मी : (मुँह सिकोड़कर) केतना थूँकु उडावत हई ? (मुँह पोंछती हुई) फिर या पूजा-पाठ केरि गठरी कतौं बाँधि कै धरि दे औरु तोहूँ किरिस्तान होइ जा ।

भगवानदास : दरूरत होती तो यही तरता । पर, इसती दरूरत त्या है ? दामोदर और वहू सब तर ही लेते हैं ।

लक्ष्मी : अपनि भरि खूब कई लेवत है, खूव । मेहतरन और तुर्कन के साथ वैठि के खाय लागि, अँगरेजन के साथ

टेबिल-कुर्सिन पर बैठि के माँस-मछरी, सराब, सबै गटा-गट उडावन लागि। वह पुतऊ खसम के जियतै सेंदुर, टिकुली, नथनी, बिछिया सबै उतारि डारेसि और बाल कटाइ दिन-राति ऐसी से वैसी गलिन-गलिन नगी-बूची मारी-मारी फिरति है, लाज-सरम सबै घोरि कै पी डारेसि। औरु बेटवा तौ हम दून्हन के जियतै म्वाछा बनवाय डारेसि, दिन-राति अँगरेजी कपरा पहिरे तुर्कन किरि-स्तानन के साथ डोय-डोय घूमत-फिरत है। हमारी इज्जति-आबरू केरि वहिका तनिकिउ फिकिर नहिना, वह मनोरमा अब ही ते अपने मन कै करै लागि है, बर-बियाहे की बात तौ वहिका जहरुई अस लगती हैं। अपनि भरि खूब कई लेव, खूब। (कुछ ठहरकर) आजु मैं ई पूजा के समान का कुवाँ मा जो न डारिआवौ तो म्वार नाव लछिमि नही। (चाँदी के बर्तनो सहित पटा को उठाकर एक दरवाजे से शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान।)

भगवानदास : (खड़े होकर, जल्दी-जल्दी पीछे जाते हुए) अरे ताँदी ते वर्तन हैं, ताँदी ते।

[परदा गिरता है।]

आठवाँ दृश्य

स्थान नगर का एक मार्ग

समय : सन्ध्या

[दूरी पर मकान दिखायी देते है। साधारण रूप से चौड़ा मार्ग है। मनोरमा और सुशीला का अपनी साधारण वेश-भूषा में प्रवेश।]

सुशीला : वहन, लॉजिक तो तुम्हारा वड़ा प्रिय विषय रहा है न ?

मनोरमा : रहा तो है, वहन।

सुशीला : फिर आज तुम्हें क्या हो गया, क्या लॉजिक प्रेम मे विलीन हो गया ?

मनोरमा : क्या कहूँ ? सच कहती हूँ कि प्रोफेसर साहव का एक प्रश्न भी मेरा मन आकर्षित न कर सका।

सुशीला : परन्तु, वहन, इस प्रकार किस तरह काम चलेगा ? इन पन्द्रह दिनो मे परीक्षा की सारी तैयारी करनी है। तुम सदा प्रथम श्रेणी में आयी हो।

मनोरमा : तुम प्रथम श्रेणी की वात करती हो, सुशीला, इस परिस्थिति में तो मैं पास होने तक की आशा नही करती।

सुशीला : यह तो भारी अनर्थ होगा।

मनोरमा : दिखता तो यही है, पर करूँ क्या ? कल से आज तक मैंने लाख प्रयत्न किया कि मैं कुछ पढ़ूँ, पर पढने की मानसिक स्थिति में ही न आ सकी। मैंने जीवन मे तुमसे कभी कोई बात नही छिपायी। सच कहती हूँ, वही मुख, वही छवि, सोते-जागते, उठते-बैठते, नेत्रों के सम्मुख घूम रही है। वे शब्द, वे वाक्य अब तक कानो में गूँज रहे हैं। सारा का सारा जीवन उथल-पुथल हो गया है।

सुशीला : परन्तु, बहन, तुम तो असम्भव बात का स्वप्न देख रही हो, वह क्षत्रिय है, तुम वैश्य, वह निर्धन देहात से आया हुआ है, और तुम इतने धनी वश मे उत्पन्न हुई हो, यह बात होना कभी सम्भव है ?

मनोरमा : तुम मेरा आशय ही नही समझी। तुम समझती हो, मैं उनसे विवाह करना चाहती हूँ ?

सुशीला : (आश्चर्य से) और नही तो क्या ?

मनोरमा : यह बात तो अब मेरे हृदय में नही उठी थी, यह तो तुमने एक नई हलचल उत्पन्न कर दी।

सुशीला : (और भी आश्चर्य से) फिर तुम उससे क्या चाहती हो ?

मनोरमा : उनके सग रहना। उनको देखने के लिए नेत्र उत्कठित हो रहे हैं, उनके वाक्य सुनने के लिए कान आतुर हैं, हृदय उनके समीप जाने के लिए उछल रहा है, परन्तु उनसे विवाह करने की तो मेरी इच्छा अब तक न हुई थी, यह तो तुमने एक नवीन तरग उठा दी।

सुशीला : यह तो वडी विचित्र वात है !

मनोरमा : क्यो, विचित्र क्यों है ? क्या स्त्री-पुरुष का वैवाहिक सम्वन्ध ही रह सकता है ? और किसी प्रकार का नही ?

सुशीला : रह क्यो नही सकता और सम्वन्ध भी रह सकता है, पर प्रेम-सम्वन्ध और अविवाहित प्रेम-सम्वन्ध का अन्तिम परिणाम तो विवाह ही होता है ।

मनोरमा : मै यह नही कहती कि यह होना अनुचित है, परन्तु मै इसे अनिवार्य भी नही मानती । उन पर एकाएक अत्यधिक प्रेम और उनके विना अत्यधिक विकलता का अनुभव करने पर भी, कम से कम अव तक तो, मेरे हृदय में विवाह की कल्पना नही उठी थी ।

सुशीला : सचमुच तुम वड़ी विचित्र हो ।

मनोरमा : मै सच कहती हूँ कि मै तो विवाह के सम्वन्ध मे कभी सोचती ही नही; मै तो उसे अनिवार्य वस्तु नही मानती । जव-जव माताजी और पिताजी इस सम्वन्ध मे वातचीत करते हैं तव-तव मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि मेरे विवाह की कोई आवश्यकता ही नही है ।

सुशीला : कैसी वातें करती हो, मनोरमा ?

मनोरमा : सीधी-सादी, वहन, अच्छा, थोडी देर के लिए यदि तुम्हारा कहना ही मान लूँ कि विवाह एक आवश्यक वस्तु है, उसी के साथ यह भी मान लूँ कि मेरा विवाह किसी वैश्य और धनवान से होना चाहिये, पर वर्तमान परिस्थिति में, जव, पल भर भी उनके विना मुझे अपना

जीवन भार-स्वरूप जान पडता है, तब, क्या किसी दूसरे के सग विवाह से मुझे कभी सुख मिल सकता है ?

सुशीला : मानती हूँ, नही।

मनोरमा : और विवाह काहे के लिए है ?

सुशीला : सुख के लिए।

मनोरमा : वर-वधू के सुख के लिए अथवा रूढि के सतुष्ट करने को ?

सुशीला : वर-वधू के सुख के लिए।

मनोरमा : तो उनसे मेरा विवाह इसलिए नही हो सकता कि वे क्षत्रिय हैं और मैं वैश्य, वे निर्धन हैं और मैं धनवान, यद्यपि मैं विवाह के लिए इन बाधाओ को बाधा नही समझती, दूसरे के सग विवाह से मुझे सुख नही हो सकता, अत. विवाह की बात ही छोड देनी चाहिए।

सुशीला : विवाह की बात क्यो छोड देनी चाहिए, उस व्यक्ति को हृदय से निकालने का प्रयत्न करना चाहिए।

मनोरमा : आह ! सुशीला, आह ! यह तुम क्या कहती हो ? यह अब हो सकना सम्भव है ? उन्हे हृदय से निकाल देना, असम्भव, सर्वथा असम्भव है। जिस प्रेम की जडें एक ही दिन मे हृदय मे इतनी गहरी चली गयी हैं कि उन्हें निकालना मानो हृदय को निकालकर फेंक देना है, उस प्रेम से मुख मोडना ? आश्चर्य की बात कहती हो, बहन !

सुशीला : तब तो दु ख का हिमालय, क्लेश का समुद्र सम्मुख है।

मनोरमा : क्यों ?

सुशीला : क्यों क्या, स्पष्ट है। तुम्हारे माता-पिता तुम्हारा विवाह अवश्य करना चाहेंगे, तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल करेंगे, उनसे तुम्हारा विवाह असम्भव है।

मनोरमा : उनसे चाहे असम्भव हो, परन्तु दूसरे से भी सम्भव नही है।

सुशीला : (आश्चर्य से) तो तुम कुमारी रहना चाहोगी ?

मनोरमा : इसके विचार की अभी कोई आवश्यकता नही है, और यदि कुमारी रहना ही पडा तो कौन आकाश-पाताल एक हो जायगा ? साधारण-सी बात है।

सुशीला : परन्तु तुम तो पश्चिमी सभ्यता के विरुद्ध हो। यह तो पश्चिम मे होता है।

मनोरमा : कुमारी रहने का पश्चिमी कुमारियो ने ही ठेका नही लिया है। भारत में भी पहले अनेक कुमारियाँ कुमारी रहती थी। व्रज मे राधा और अनेक कुमारियाँ श्रीकृष्ण के लिए आजन्म कुमारी रही थी। बौद्ध-काल मे अनेक उच्च वंश की कन्याओ ने कुमारी रहकर धर्म, देश और समाज की सेवा की थी।

सुशीला : परन्तु आजकल तो भारत मे यह नही होता।

मनोरमा : तभी तो स्त्रियो का जीवन नरकवत् हो रहा है। यदि कोई कुमारी रहना चाहे, तो उसका बलपूर्वक विवाह करने की क्या आवश्यकता है ? मैं यदि पूर्व को पश्चिम नही बनाना चाहती, तो, आज का जैसा पूर्व है, उसे

वैसा का वैसा भी तो नही रखना चाहती ।

सुशीला : और अविवाहित रहकर भी प्रकाशचन्द्र के सग रहना चाहती हो ?

मनोरमा : अवश्य, क्योकि मेरे हृदय पर उनसे अधिक और किसी का कभी प्रभाव नही पडा ।

सुशीला : बिना विवाह के तुम्हारे और उसके सग को लोग क्या कहेंगे ?

मनोरमा : मैं किसी से डरती नही हूँ ? अपनी आत्मा से अवश्य डरती हूँ । यदि मेरे हृदय में उनके लिए वासना से भरा प्रेम नही है, लालसा से भरा प्रेम नही है, विशुद्ध प्रेम है, निष्कपट प्रेम है, तो ससार कुछ भी कहे, मुझे उसकी चिन्ता नही । यह तो मेरी परीक्षा होगी । मुझे देखना है कि ससार अपने गुलामो से ही अपनी सेवा कराता है, अथवा उससे भी, जो अपने सिद्धान्तो के अनुकूल चलकर ससार की गुलामी तो नही करना चाहता, पर ससार की यथार्थ सेवा अवश्य करना चाहता है ।

सुशीला : और उसके सग रहकर तुम करोगी क्या ?

मनोरमा . वही जो वे करेंगे । जीवन के उनके और मेरे ध्येय मे कोई अन्तर नही है । जो अकेली करती वह उनके सग करूँगी । अकेले करने से उतनी सफलता न मिलती, जितनी उनके सग रहकर मिलेगी । सर्वसाधारण जन-समुदाय को सुखी करने का प्रयत्न मैंने अपने जीवन का उद्देश्य बनाया था, यही उनका जान पडता है । गाधीजी

के असहयोग आन्दोलन के समय तो मैं बहुत छोटी थी, यद्यपि मुझे स्मरण है कि उस समय भी, मैं कई राष्ट्रीय गायन बड़े चाव से गाती और जुलूस आदि देखकर बड़े जोर से जय-जयकार करती थी, सत्याग्रह आन्दोलन में, मैं अध्ययन के कारण भाग न ले सकी, पर अब रुक सकना मेरे लिए सम्भव नहीं दिखता। मैंने विद्याभ्यास पूर्ण करने के पश्चात् जो कुछ करने का निर्णय किया था वह अभी से आरम्भ कर दूँगी।

सुशीला : तो अब अध्ययन का क्या होगा ?

मनोरमा : प्रयत्न करूँगी कि वह भी चलता रहे।

सुशीला : वह इसी प्रकार चलता रहेगा जैसा आज लॉजिक के प्रश्नों के उत्तर के समय चला था ?

मनोरमा : यह मेरे अधिकार की बात नहीं है।

सुशीला : तब तो फेल होना निश्चित है।

मनोरमा : जो कुछ भी हो, (हाथ की घड़ी देख) अच्छा, चलो, अब सभा का समय हो गया। उनका भाषण सुनें।

[दोनों का प्रस्थान। परदा उठता है।]

नवाँ दृश्य

स्थान गाँधी-चौक

समय सन्ध्या

[बीच में मैदान है। दूर-दूर पर मकान दिखायी देते हैं। मैदान में सार्वजनिक सभा का प्रबन्ध है। गैस की बत्तियाँ जल रही हैं। पृथ्वी पर टाट बिछे हैं। बीच में एक तख़्त पर, एक छोटी-सी गद्दी और तकिया है, जिन पर खादी की खोली है। गद्दी के सामने एक छोटी-सी डेस्क है, उस पर कुछ सादे कागज, एक पेंसिल और एक घण्टी रखी है। तख़्त खाली है। टाटों पर अनेक प्रकार के कपड़े पहने जनता बैठी है। हिन्दू और मुसलमान दोनो हैं, पर हिन्दू अधिक हैं, कुछ स्त्रियाँ भी हैं, जो तख़्त के बाँयीं ओर बैठी हैं। तख़्त के दाहिनी ओर प्रकाशचन्द, कन्हैयालाल और कई युवक खादी के कपड़े पहने बैठे हैं। कुछ लोग आते-जाते हैं। मनोरमा और सुशीला का प्रवेश। ये दोनो स्त्रियो के साथ बाँयीं ओर बैठती हैं। इन्हे देख लोगो में कुछ काना-फूँसी होती है।]

एक युवक : (खड़े होकर) सभा का समय हो चुका है, अत. मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आज की सभा के सभापति हमारे

नगर के प्रधान राष्ट्रीय नेता बाबू कन्हैयालाल वर्मा बनाये जायँ। (बैठ जाता है। तालियाँ बजती हैं।)

दूसरा युवक : (खड़े होकर) मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ। (बैठ जाता है। तालियाँ बजती हैं।)

कन्हैयालाल : (तख्त पर बैठ और फिर खड़े होकर) उपस्थित हिन्दू-मुसलमान बहनो और भाइयो ! आज की यह सभा जिस कार्य के लिए बुलायी गयी है, वह आप लोगो को विज्ञापन और मुनादी द्वारा मालूम हो ही चुका है। सत्याग्रह आन्दोलन के कुछ काल पश्चात् ही, यह बड़े सौभाग्य की बात है कि, हमारे नगर मे गाँव से एक प्रतिभाशाली और सुवक्ता युवक का आगमन हुआ है। आपको उनका भाषण सुनकर विदित होगा कि वर्तमान शिक्षा से शिक्षित हुए बिना, हमारे इस प्राचीन भारत देश मे, आज भी गाँवो तक मे, कैसे रत्न निवास करते हैं। (तालियाँ) भाइयो ! कल सन्ध्या को आज के वक्ता महाशय का हमारे नगर के प्राचीन और सर्वश्रेष्ठ रईस दानवीर राजा अजयसिंहजी के उद्यान मे भाषण हुआ था। यद्यपि भाषण देने का वह उपयुक्त अवसर नही था तथा उस भाषण मे कही गयी सभी बातो से मैं सहमत नही हूँ, और बहुत सी बाते केवल आवेश मे आकर ही कही गयी थी, जो इस अवस्था मे वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से शिक्षित और परिमार्जित न होने के कारण, ससार द्वारा स्वीकृत वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धान्तो के ज्ञान बिना कह डालना स्वाभाविक है, तथापि इसमे

सन्देह नही कि भाषण सुन्दर, परम सुन्दर था। (तालियाँ) आप जानते हैं, हमारे नगर मे राजा साहब का वश कितना प्राचीन और प्रतिष्ठित है। उन्होंने और उनके पूर्वजो ने हमारे नगर के अनेक उपकार किये हैं। उनका दान गगा और यमुना के प्रवाह के सदृश हमारे नगर-निवासियो के लाभ ।

एक युवक : (खड़े होकर) आज की सभा क्या राजा अजयसिंह और उनके वशजो के यशोगान के लिए बुलायी गयी है? (बैठ जाता है।)

दूसरा युवक : (खड़े होकर) विज्ञापन में तो यह नही लिखा था। (बैठ जाता है।)

तीसरा युवक : (खडे होकर) मुनादी मे भी यह नही कहा गया था। (बैठ जाता है।)

बहुत सी जनता : बिल्कुल ठीक, बिल्कुल ठीक।

कन्हैयालाल : (क्रोध में जोर से) सभापति के भाषण के बीच मे किसी को बोलने का अधिकार नही है। (लोग चुप हो जाते हैं।) अच्छा जाने दीजिए इस विषय को। मैं आज के प्रधान वक्ता श्रीयुत प्रकाशचन्द्रजी से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपना भाषण आरम्भ करें। (बैठ जाता है और हाथ में पेंसिल ले लेता है।)

प्रकाशचन्द्र : (खड़े होकर) भाइयो और बहनो! यद्यपि मैं वर्तमान सभा-समाजो के प्रचलित शिष्टाचारो से अनभिज्ञ हूँ, तथापि सबसे पहले मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि

सभापति महाशय को, जिन्होंने मेरी प्रशसा की है, हृदय से धन्यवाद दूँ। आप लोगो ने जिस उत्साह से मेरा स्वागत किया है इसके लिए मैं आप लोगो का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। सज्जनो! सभापति महाशय ने आपको सचेत कर दिया है कि मैं ग्रामीण जीवन व्यतीत करते हुए आपके नगर में आया हूँ और वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से शिक्षित और परिमार्जित न होने के कारण मुझे ससार-द्वारा स्वीकृत वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धान्तो का ज्ञान नही है। मैं तो और आगे बढता हूँ और यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि अभी इन सिद्धान्तो का मेरे हृदय पर पूरा-पूरा प्रकाश तक नही पडा है। मुझे तो मेरी दुखी माता ने, जिसका न जाने कितना समय दु.ख मे व्यतीत हुआ है, शिक्षित किया है। यह शिक्षा एक दुखी हृदय की शिक्षा है, सिद्धान्तो की नही। कहाँ दु ख से द्रवीभूत हृदय और कहाँ ठोस सिद्धान्त! मेरी शिक्षा मस्तिष्क की नही, हृदय की शिक्षा है, और मुझे चाहे ससार-द्वारा स्वीकृत वैज्ञानिक सिद्धान्तो का ज्ञान न हो, तथापि मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि ससार मे मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय का स्थान सदैव उच्च रहा है, मस्तिष्क ने यद्यपि ज्ञान दिया है, तथापि बलिदान का कार्य सदा हृदय ने ही किया है।

कुछ युवक : अवश्य, अवश्य।

प्रकाशचन्द्र : फिर, महाशयो! जिस ग्रामीण जीवन मे मैं रहा, वहाँ के जीवन मे भी मैंने ससार-द्वारा स्वीकृत इन

वैज्ञानिक सिद्धान्तो का समावेश नही देखा, इनकी चर्चा नही सुनी। इन सिद्धान्तो का जो कुछ भी परिचय मुझे मिला है, वह इस नगर के कुछ दिनो के जीवन मे। (कुछ ठहरकर) पर, सज्जनो! ससार सिद्धान्तो के लिए है अथवा सिद्धान्त ससार के लिए ?

एक व्यक्ति : सिद्धान्त ससार के लिए।

अनेक युवक : अवश्य, अवश्य।

प्रकाशचन्द्र : यदि सिद्धान्त ससार के लिए हैं तो मैं कहना चाहता हूँ कि इन सिद्धान्तो मे कोई न कोई त्रुटि अवश्य है, जिससे इन सिद्धान्तो के स्वीकृत और इनका पालन करने के पश्चात् भी ससार-निवासियो को सुख और सत्य का अनुभव नही हो रहा है।

कुछ व्यक्ति : हिअर-हिअर! हिअर-हिअर!

प्रकाशचन्द्र : सज्जनो! ग्रामो मे सम्भवत इन सिद्धान्तो का प्रचार नही होगा, परन्तु नगरो मे तो है। नगर-निवासी क्यो दुखी हैं ? निर्धन लोग कदाचित् सामाजिक सगठन के आवश्यक परिणाम हो और निर्धनता के कारण उन्हे सुख न हो, पर, धनी क्यो सुखी नही हैं ? अपठित दुखी हैं, अविद्या के कारण उनका दुखी रहना भी कदाचित् स्वाभाविक हो, परन्तु पठित, बुद्धिमान और विद्वान् क्यों दुखी हैं ? जिन पर अधिकारो का प्रयोग होता है, वे कदाचित् अधिकारो के प्रयोग से पीडित होने के कारण सुखी नही हैं, और उनका दुखी रहना भी कदाचित्

अनिवार्य समझा जावे, परन्तु जिनके हाथो में अधिकारों के प्रयोग की सत्ता और शक्ति है, वे क्यो सुखी नही हैं? ये सारे विषय अवश्य विचारणीय हैं।

कुछ व्यक्ति : अवश्य विचारणीय हैं, अवश्य विचारणीय हैं।

प्रकाशचन्द्र : महाशयो ! अब हम लोग यह देखें कि यह ससार द्वारा स्वीकृत वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धान्त क्या हैं ? मुझे नागरिक जीवन के कुछ दिनो मे, इनमे से जिन सिद्धान्तो का परिचय हुआ है, उनके सम्बन्ध में क्या मैं कुछ कहूँ ?

कुछ व्यक्ति : कहिये, अवश्य कहिये।

प्रकाशचन्द्र : सज्जनो ! समाज मे धनी और निर्धनो का होना एक स्वीकृत सिद्धान्त माना जाता है, परन्तु क्या ऐसा समाज नही हो सकता जहाँ इस प्रकार का भेद-भाव न हो, या कम से कम इस सीमा को न पहुँच गया हो ? मेरे मतानुसार तो यह समाज-रचना ही दोष-पूर्ण है, क्योकि इस सामाजिक रचना मे वहुसख्यक लोगो को निर्धन, अत्यन्त निर्धन रहना पडता है और अल्पसख्यक लोगो को उनके द्वारा उपार्जित धन पर धनी बनने का अवसर मिलता है।

कुछ व्यक्ति : अवश्य, अवश्य।

प्रकाशचन्द्र : अधिकाश धनी वर्ग ने, स्वाभाविक पुरुषार्थ से, यह धन नही कमाया है। अनेक भोले-भाले मनुष्य इन धनियो द्वारा लूटे गये हैं। वे मनुष्य इसलिये दुखी हैं कि उन्हे लूटा गया है, परन्तु ये धनी भी तो सुखी

रहते ? आश्चर्य तो यह है कि ये भी दुखी हैं। किस लिए दुखी हैं, जानते हैं ?

कुछ व्यक्ति : आप बतलाइए, आप बतलाइए।

प्रकाशचन्द्र : इसलिए दुखी हैं कि इस लूट को चलाने के लिए उन्हे अपनी सत्ता स्थापित रखने को नित्य नये षड्यन्त्र रचने पडते हैं। उनके हृदय इन षड्यन्त्रो से व्याप्त रहते हैं। सारा जन्म, और सारा जन्म ही क्या, उनकी पीढियो की पीढियें यही करते-करते बीतती हैं, अत उन्हे भी सत्य सुख का अनुभव नही हो पाता। निर्धन शरीर के लिए आवश्यक वस्तुओ के लुट जाने से दुखी हैं, तो लुटेरे मानसिक शाति के लुट जाने से क्लेशित हैं। (तालियाँ) जिन राजा अजयसिह की आपके सभापति महाशय ने इतनी प्रशसा की है, उन्ही का वृत्तान्त .. ।

कन्हैयालाल : (खड़े होकर) मैं वक्ता महाशय से निवेदन करता हूँ कि वे किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप न करें। (बैठ जाता है)

प्रकाशचन्द्र : मैंने तो किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप नही किया। कुछ जीते-जागते उदाहरण दिये विना मैं जनता को अपने विचार किस प्रकार समझा सकता हूँ। (जनता से) महाशयो ! कहिये मैं बोलूँ या बैठ जाऊँ ?

जोर की आवाजें अवश्य वोलिये, अवश्य वोलिये ।

प्रकाशचन्द्र : मैं राजा अजयसिह का दृष्टान्त दे रहा था और उनके पश्चात् दामोदरदास गुप्ता आदि और कुछ लोगो

के दृष्टान्त आपके सम्मुख रखूँगा। हाँ, तो राजा अजय ।

कन्हैयालाल : (घण्टी बजाकर) मुझे बड़ा खेद है कि मैं सार्वजनिक सभा मे इस प्रकार व्यक्तिगत बाते नही होने दे सकता।

एक युवक : क्या इन धनवानो से कुछ रुपया पत्र के लिए मिला है ?

कुछ जनता : अवश्य मिला है, अवश्य मिला है।

कुछ व्यक्ति : हम प्रकाशचन्द्र का पूरा भाषण सुनना चाहते हैं।

कुछ व्यक्ति : जैसा का तैसा, पूरा।

जोर की आवाज़ें : आप बोलिए, बोलते जाइए।

दूसरी ओर से आवाज़ें : बिल्कुल मत रुकिए, किसी का कहना न मानिए।

प्रकाशचन्द्र : अच्छी बात है। राजा अजयसिंह ।

कन्हैयालाल : (फिर कई बार घण्टी बजाकर खड़े हो, पेंसिल हाथ में घुमाते हुए जोर के स्वर में, क्रोध से) मैं कभी भी व्यक्तिगत बाते न होने दूँगा।

[प्रकाशचन्द्र बैठ जाता है।]

एक युवक : (खड़े होकर) हम तुम्हे सभापति ही नही रखना चाहते।

बहुत सी जनता : बिल्कुल नही रखना चाहते।

[बड़ा हल्ला मचता है।]

एक युवक : (खड़े होकर) मैं प्रस्ताव करता हूँ कि इस सभा

का कन्हैयालाल वर्मा पर विश्वास नही रहा, अत दूसरा सभापति चुना जावे।

दूसरा युवक : मैं इस प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूँ।

कन्हैयालाल : (पेंसिल को पटककर, तख्त से उतरते हुए अत्यन्त क्रोध से) मैं स्वय ही ऐसी सभा का सभापति नही रहना चाहता। (जाता है।)

कुछ जनता : वह भागा, वह भागा!

[बड़ा हल्ला होता है।]

एक युवक : (खड़े होकर) शान्त होइए, महाशय! शान्त होइए।

[सब जगह शान्ति का प्रयत्न किया जाता है, जो कुछ देर में हो जाती है।]

एक युवक : (खड़े होकर) मैं प्रस्ताव करता हूँ कि इस सभा के सभापति का आसन पडित शालिग्रामजी ग्रहण करें। (बैठ जाता है।)

दूसरा युवक : (खड़े होकर) मैं इसका अनुमोदन करता हूँ। (बैठ जाता है।)

शालिग्राम : (आसन ग्रहण कर, खड़े होकर) मैं युवक-केशरी श्रीमान प्रकाशचन्द्रजी से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपना भाषण पूर्ण करे। (बैठ जाता है।)

कुछ व्यक्ति : युवक-केशरी प्रकाशचन्द्र की जय!

जनता : जय!

प्रकाशचन्द्र : (तालियो और जय-जयकार के बीच खड़े होकर) सभापति महाशय! बहनो और भाइयो! मुझे बडा खेद

है कि आपकी सभा के नियम आदि मुझे मालूम नही हैं, कदाचित् इसी से यह गड़बडी हुई है।

जनता : बिल्कुल नही, बिल्कुल नही।

एक युवक : गड़बड़ी की जड़े तो बडी गहरी हैं।

प्रकाशचन्द्र : मैं ससार-द्वारा स्वीकृत वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे बोल रहा था और इसीलिए मैं कुछ लोगो के दृष्टात दे रहा था।

कुछ व्यक्ति : अवश्य दीजिए, अवश्य दीजिए।

प्रकाशचन्द्र : राजा अजयसिंह की दशा देखिए। उनके पूर्वजों ने न जाने कितने भोले-भाले मनुष्यो को लूटकर यह सम्पत्ति एकत्रित की। यह केवल सयोग की बात है कि अजयसिंह ने उस वंश मे जन्म ले लिया। फिर जो कुछ मैंने यहाँ सुना, उससे मालूम हुआ कि उन्होने अपनी धन-सम्पत्ति को उन मार्गों मे खर्च किया, जिनसे उनके मतानुसार उन्हे सुख मिलना चाहिए था।

एक व्यक्ति : अरे, बडे बुरे मार्ग थे।

कुछ व्यक्ति : बड़े बुरे, बडे बुरे।

प्रकाशचन्द्र : उनके ध्यान से तो उन्हे उन मार्गों से सुख मिलना था, किन्तु इतने सम्पत्तिशाली और सुखो के लिए खर्च करने वाले राजा अजयसिंह को भी कल मैंने अच्छी तरह देखा। सुन्दर वस्त्रो से वे सुसज्जित थे, हीरों के आभूषण उनके शरीर पर जगमगाते हुए नेत्रो को चकाचौंध कर रहे थे। उनके प्रीति-भोज मे नगर का अच्छे से अच्छा भोजन और अच्छे से अच्छा कहा जाने वाला समाज

एकत्रित था। गवर्नर साहब भी उपस्थित थे। वह उद्यान भी सुन्दर से सुन्दर था। परन्तु अजयसिंह के मुख पर मुझे तो सुख का एक भी चिन्ह न दिखा। सुख के स्थान पर दुःख और क्लेशो के ही चिन्हो का मैंने उन पर साम्राज्य पाया।

कुछ व्यक्ति : हिअर-हिअर ! हिअर-हिअर !

प्रकाशचन्द्र : इसी प्रकार आपके नगर के प्रधान बढते हुए सर भगवानदास के घराने के व्यक्तियो का दूसरा दृष्टात है। दामोदरदास गुप्ता और उनकी पत्नी रुक्मिणी देवी आज आपके नगर के सभ्य समाज मे अग्रगण्य समझे जाते हैं। कल मैंने उनको भी निकट से देखा। दामोदरदास के मुख पर मैंने षड्यन्त्र छाया हुआ देखा और रुक्मिणी के मुख पर आतुरता।

कुछ व्यक्ति : हिअर-हिअर ! हिअर-हिअर !

प्रकाशचन्द्र : कल ही जब सत्य-समाज का सगठन हुआ तब मुझे मालूम पडा कि मेरी कल्पना मिथ्या नही थी। वे एक भारी षड्यत्र की रचना कर रहे हैं।

एक व्यक्ति : उस षड्यत्र को भी बतलाइए।

कुछ व्यक्ति . अवश्य, अवश्य।

प्रकाशचन्द्र : सुना है, दामोदरदास ने ग्राम-निवासियो के लाभ के लिए एक नहर की योजना सरकार के सम्मुख उपस्थित की है। यह भी सुना है कि उसका ठेका उन्ही की कम्पनी को मिलेगा और कदाचित् पानी तक उस नहर मे यथेष्ट न आवे।

कुछ जनता : धिक्कार है ! धिक्कार है !

कुछ जनता : शेम-शेम ! शेम-शेम !

प्रकाशचन्द्र : और आपके मिनिस्टर माननीय धनपाल भी इसमें मिले हुए हैं। इस सरकार की दशा तो आप जानते ही होंगे। मैंने यहीं आकर अधिक जाना है। सभी जगह अनर्थ ही अनर्थ हो रहा है। उसकी सत्ता यहाँ कैसे स्थापित रहे, इसी की उसे चिन्ता है, प्रजा की नहीं। क्या इन्हीं ससार-द्वारा स्वीकृत वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धान्तों-द्वारा ससार मे सुख हो सकता है ?

कुछ जनता : सब चोर हैं।

कुछ जनता : नहीं, सब डाकू हैं।

प्रकाशचन्द्र : अब सज्जनो ! क्या आप लोग आजकल के दूसरे स्वीकृत वैज्ञानिक हिन्दू-मुस्लिम सिद्धान्तों का वृत्तान्त सुनेंगे ?

हिन्दू : अवश्य, अवश्य।

मुसलमान : जुरूर।

जनता : कहे चलिए, कहे चलिए।

प्रकाशचन्द्र : जिन सिद्धान्तों के अनुसार एक ही स्थान पर रहने वाले लोग, छोटी-छोटी-सी बात पर, एक दूसरे से सदा लड़ने को तैयार रहें, एक दूसरे के सिर फोड़ें, वे सिद्धान्त कहाँ तक ठीक हो सकते हैं ? हिन्दू जानते हैं कि इस देश में रहने वाले सब मुसलमान हिन्दू नहीं हो सकते। मुसलमान जानते हैं कि इस देश मे रहने वाले

सारे हिन्दू इस्लाम-धर्म ग्रहण नही कर सकते। दोनो जानते हैं कि दोनो को एक दूसरे के पडोसी बनकर ही रहना है, पर इतने पर भी लडते हैं, और लडते हैं धर्म के नाम पर उस धर्म के नाम पर जिसका कार्य शान्ति, सुख और भ्रातृ-भाव की स्थापना है। सज्जनो! इस लडाई का कारण जानते हैं ?

मुसलमान : जानते तो क्यो लडते।

हिन्दू : आप बतलाइए, आप बतलाइए।

प्रकाशचन्द्र : इन्हे लड़ाते हैं विदेशी स्वार्थी और इन दोनो समाजो के स्वयभू नेता।

कुछ व्यक्ति : सच है, सच है।

प्रकाशचन्द्र : सज्जनो! इन नेताओ का नेतृत्व तभी तक है जब तक इन समाजो मे झगडा है। मुझे आपके नगर के हिन्दू-मुस्लिम नेता पडित विश्वनाथ और मौलाना शहीदबख्श के मुखो पर, उन्हे उस नेतापन के सँभालने की कितनी चिन्ता रहती है, यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

एक हिन्दू : भाई, कैसा सच कहा है।

बहुत से हिन्दू बिल्कुल सच, बिल्कुल सच।

मुसलमान : इसमे कोई शक नही, इसमे कोई शक नही।

प्रकाशचन्द्र : महाशयो! हिन्दू-मुस्लिम जनता तो लडती है, परन्तु ये नेता आपस मे क्यो नही लडते ? इनमे से किसी ने आज तक एक दूसरे का सिर फोडा ?

जनता : कभी नही, कभी नही।

प्रकाशचन्द्र : आपकी म्यूनिस्पैल्टी मे एक सभापति और दूसरा उप-सभापति रहकर कैसे काम करते हैं। म्यूनिस्पैल्टी के चरित्र मैंने तो यही आकर सुने हैं। आप मुझ से अधिक जानते होगे।

जनता : खूब जानते हैं, खूब जानते हैं।

हिन्दू : सब खाऊ हैं।

मुसलमान : बेशर्म हैं।

प्रकाशचन्द्र : नही, ऐसे हैं जैसी सडी हुई लकडी होती है। जिस प्रकार उस लकडी पर कोई खुदाव का काम नही किया जा सकता, उसी प्रकार ये नही सुधारे जा सकते।

जनता : ठीक, बिल्कुल ठीक।

प्रकाशचन्द्र : सज्जनो! सिद्धान्तो के लिए ससार नही है, ससार के लिए सिद्धान्त हैं। (तालियाँ) यदि वर्तमान स्वीकृत वैज्ञानिक कहे जाने वाले इन सिद्धान्तों से ससार मे सत्य-सुख की स्थापना सम्भव नही है, तो इन सिद्धान्तो का मूलोच्छेदन कर डालना ही हमारा कर्तव्य है।

कुछ लोग : हिअर-हिअर! हिअर-हिअर!

प्रकाशचन्द्र : और यह कार्य किसी पुराने गृह के निर्बल विभागो को गिराने के सदृश है। जिस प्रकार उसका एक भाग गिराते समय यह निश्चय नही कहा जा सकता कि उससे लगा हुआ दृढ दिखने वाला विभाग उस निर्बल विभाग के गिराने के पश्चात् स्थित रह सकेगा, या नही, उसी प्रकार इन वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धान्तो मे एक के उखाड़ने

पर दूसरे के सम्बन्ध मे यह नही कहा जा सकता कि उसका क्या होगा ?

जनता : हिअर-हिअर ! हिअर-हिअर !

प्रकाशचन्द्र : सज्जनो ! वर्तमान दु खों का—धनी वर्ग के, निर्धनो के, पठितो के, अपठितों के, नगर-निवासियो के, ग्राम-निवासियो के, पुरुष-वर्ग के, स्त्री-वर्ग के, बालको के, बालिकाओ के—सभी दु.खो का जिन-जिन उपायो से नाश हो, मेरे मतानुसार, वही सच्चे सिद्धान्त हैं, वही मेरे इस शरीर का, इस हृदय का, जिस हृदय मे न जाने कितने काल से दुखी माता की शोकमयी प्रतिमा अकित है, ध्येय है, कर्तव्य है, धर्म है और इसके लिए इस शरीर के काम आने की आवश्यकता हो तो भी यह तैयार है ।

जनता : धन्य है ! धन्य है !

प्रकाशचन्द्र : इसीलिए सत्य-समाज की स्थापना हुई है और इसी पुण्य कार्य में आपके भी, हिन्दुओ, मुसलमानो, सिक्खो, क्रिश्चियनो, पारसियो, बौद्धो, जैनियों, धनवानो, निर्धनों, पठितो, अपठितो, पुरुषो, स्त्रियों, सभी समाजों और वर्गों के सहयोग की आवश्यकता है ।

[प्रकाशचन्द्र बैठ जाता है । जय-जयकार और तालियो की गड़गड़ाहट के साथ ही साथ यवनिका ।]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान : सर भगवानदास का उद्यान

समय : रात्रि

[नदी के किनारे पर उद्यान है। चाँदनी में दूर नदी के पानी की छोटी-छोटी लहरें चमक रही हैं। उद्यान में दूब का मैदान पश्चिमी नाच के लिए सुन्दरता से सजाया गया है। मैदान में सफ़ेद रंग का मोटा, एक विशेष प्रकार का कपड़ा लोहे की कीलें ठोंककर बिछाया गया है, उस पर सफ़ेद चाक-मिट्टी फैली है, जिससे नाच के समय जूते सरलता से फिसल सकें। इस कपड़े के तीन ओर गद्दीदार सोफा और कुर्सियाँ हैं। बीच-बीच में टेबिलें भी रखी हैं, जो कपड़े से ढंकी हैं और जिन पर फूलों से भरे फूलदान सजे हैं। इधर-उधर सुन्दर पश्चिमी फूलों के गमले रखे हैं। एक ओर कुछ दूरी पर एक बड़ा-सा लम्बा डेरा (रिफ्रेशमेंट-टेंट) लगा है, जिसके बीच में खाना खाने की एक लम्बी टेबिल पर अँगरेज़ी मिठाइयाँ, फल, शेम्पीन और अनेक प्रकार की मदिराएँ तथा कई फूलदान सजे हैं। कई खानसामे सफ़ेद वर्दी और कमर में चौड़ा लाल पट्टा लगाये प्रबन्ध करते हुए घूम रहे हैं। बिजली

की सफेद रोशनी से दिन का-सा प्रकाश है। संध्या के अँगरेजी कपड़े (ईवनिंग-सूट) पहने, खुले सिर, सिगरेट पीते हुए दामोदरदास और रुक्मिणी का प्रवेश। रुक्मिणी काली रेशमी पतली-सी साड़ी पहने है, उसी रंग का सलूका है। गला बहुत नीचे तक और हाथ पूरे खुले हैं। आभूषण हीरे के हैं।]

दामोदरदास : तुम, डियर, थोड़ा-सा धैर्य रखोगी तो सब बातें तुम्हारी इच्छानुसार ही हो जायँगी।

रुक्मिणी : (हाथ मलते हुए) धैर्य! धैर्य कैसा? जब उस अपमान की याद आती है, तब सिर से पैर तक आग लग जाती है, तुम धैर्य की बाते करते हो! न भोजन अच्छा लगता है, न नींद आती है, न किसी काम मे मन लगता है। मेरे निर्मल हृत्-पटल पर रात और दिन कल्याणी-द्वारा किये हुए अपमान का चित्र खिंचा रहता है।

दामोदरदास : पर तुम सोचो, मेरा जन्म-दिन कितना निकट था, आज की यह सारी व्यवस्था करनी थी, निमन्त्रण भेजने थे, इस झगड़े को लेकर बैठता तो एक नयी आपत्ति का चित्र और खिंच जाता।

रुक्मिणी : मानती हूँ, पर आज तो यह कार्य समाप्त हो जायगा। कल यदि इस चित्र को मिटाने के लिए प्रतिकार-रूपी एसिड न लगा तो यह चित्र अमिट-सा हो जायगा।

दामोदरदास : कल ही लो। कल तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही सब कुछ न हो जाय तो कहना (चारो ओर देखकर) ओहो! फाइन एरेंजमेंट, नही, रुक्मिणी?

रुक्मिणी : (चारों ओर देखकर) तुम्हारे इन्तजाम मे कभी कोई कोरकसर रह सकती है ?

दामोदरदास : (हाथ की घड़ी देखकर) अभी तो मेहमानो के आने मे विलव है। (कुछ ठहरकर) पर हाँ, मैंने धनपाल को कुछ पहले बुलाया है।

रुक्मिणी : क्यो, क्या कोई विशेष बात है ?

दामोदरदास : विशेष बात ! अरे तुम गत रविवार की पब्लिक मीटिंग का वृत्तान्त नही जानती ?

रुक्मिणी : वही न जिसमे आपकी बहन साहबा भी पधारी थी ?

दामोदरदास : हाँ, वही। उसी के सम्बन्ध में धनपाल से परामर्श करना है। उस डेविल प्रकाश ने तो बडा गडबड मचाना आरम्भ कर दिया है। (दाहनी ओर देखकर) हलो ! हिअर कम्स ऑनरेबिल मिस्टर धनपाल।

[धनपाल का प्रवेश। धनपाल की वेश-भूषा भी दामोदरदास के सदृश है।]

दामोदरदास : (आगे बढ़कर धनपाल से हाथ मिलाते हुए) वेल मिस्टर धनपाल, मैं अभी मिसेज गुप्ता से तुम्हारी ही बात कर रहा था कि तुम आ पहुँचे। थिक ऑफ दि डेविल एड ही इज़ देअर।

धनपाल : (हाथ मिलाते और मुसकराते हुए) सो यू आर थिंकिंग ऑफ डेविल्स ऑन योर बर्थ-डे, एन ओमीनस साइन। वेल, हार्टी कॉंग्रेचुलेशन फॉर योर बर्थ-डे, मिस्टर गुप्ता।

दामोदरदास : मेनी-मेनी थेंक्स, मिस्टर धनपाल।

धनपाल : (आगे बढ़कर रुक्मिणी से हाथ मिलाते हुए) आपको भी मिस्टर गुप्ता के जन्म-दिवस की बधाई है।

रुक्मिणी : (मुसकराकर) अनेक धन्यवाद।

दामोदरदास : (रुक्मिणी से) वेल, डियर, मैं इनसे बातें करता हूँ, तब तक तुम थोडा रिफ्रेशमेट का प्रबन्ध देख लो, इतना काम था कि मैं अभी रिफ्रेशमेट-टेट तक न जा सका। पर, शीघ्र ही आना, थोडा शेम्पीन भी साथ लिवा लाना।

रुक्मिणी : अच्छी बात है।

[रुक्मिणी का डेरे की ओर प्रस्थान। दोनो सोफ़ा पर बैठते हैं।]

दामोदरदास : (सिगरेट-केस को धनपाल के आगे कर गम्भीरता से) मैंने उस विषय को बहुत सोचा, अन्त मे, मैं तो इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ कि मैं उस पर मान-हानि का मुक-दमा चलाऊँ।

धनपाल : (सिगरेट लेकर जलाते हुए) तुम कई बार बड़ी शीघ्रता करते हो, मिस्टर गुप्ता, थोडा ठहरो भी। आज मैं एक नया सवाद लेकर आया हूँ। (कुछ देर तक कान में कुछ कहता है।)

दामोदरदास : (हर्ष से उछलकर, धनपाल के हाथ पर हाथ मारते हुए) अहा! यदि यही हो जाय तो सारा झगडा ही मिटे।

धनपाल : (दामोदरदास का हाथ पकडकर हिलाते हुए) हो रहा है और आशा भी है कि हो जायगा, पर थोडा धैर्य

रखने से। पब्लिक लाइफ मे थिक-स्किन्ड रहने मे काम चलता है, इस प्रकार नही।

दामोदरदास : (फिर बैठते हुए) पर, भाई, बदनामी का कुछ ठिकाना है ? सारे नगर मे मुँह-मुँह यही बात हो रही है। मनोरमा ने तो उस सभा मे जाकर और अनर्थ किया है। तुमने सुना है, वह प्रकाश के सत्य-समाज की मेम्बर भी हुई है।

धनपाल : हाँ, सुना है, और नगर में इसकी भी कम चर्चा नही है।

दामोदरदास : उसका, ऐसे समाज का मेम्बर होने से, जिसके प्रेसीडेण्ट ने हमे हजारो गालियाँ दी, और अधिक दु ख की बात क्या हो सकती है ? ऐसी दशा मे नगर मे चर्चा क्यो न हो ? लोग खाते घर का हैं और बात परायी करते हैं।

धनपाल : पर तुम उसे रोकते क्यों नही ?

दामोदरदास : बहुत प्रयत्न किये, भाई, पर एक भी सफल न हुआ।

धनपाल : अपनी माँ से कहो।

दामोदरदास : माँ से तो मैं कुछ कह नही सकता, हाँ, फॉदर से कहा था।

धनपाल : उन्होने क्या कहा ?

दामोदरदास : स्पष्ट कह दिया कि तुम्ही ने तो उसे सिर चढाया है, तुम्ही ने पढाया-लिखाया है, तुम्ही उससे कहो।

धनपाल : फिर तुम्ही क्यो नही कहते ?

दामोदरदास : मैंने भी कहा था, पर उसने मेरे ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को मेरे सम्मुख रख दिया। इस वर्ष वह बालिग भी हो गयी है, नही तो कानूनन रोकता। घर ही मे आपत्ति खडी हो गयी; करूँ तो करूँ क्या ?

धनपाल : सचमुच, भाई, बडा अनर्थ है।

दामोदरदास : क्या कहूँ, फिर उस डेविल ने किसी को भी तो नही छोडा। अजयसिंह, तुम, विश्वनाथ, शहीदबख़्श, मैं, सभी पर आक्षेप।

धनपाल : यही तो उसने मूर्खता की कि सबके सबको अपमान की एक ही माला मे पिरो डाला।

दामोदरदास : पर, इसकी उसे क्या चिन्ता है ? वह कुछ राजनीतिज्ञ तो है नही, न उसे चुनाव मे खडा होना है।

धनपाल : हाँ, जनता के जैसे निघडक या गैरज़िम्मेदार और मूर्ख आदमी होते हैं, वैसा है।

दामोदरदास : तभी तो जो मुँह मे आया बक डाला। उठाई जीभ लगा दी तलुवे से। नगा ठहरा। नगा खुदा से बड़ा। वह क्या पहने और क्या निचोय ?

धनपाल : ठीक है, भाई, ही हैज़ नथिंग टु स्टेक।

दामोदरदास : पर, देखो, एक ही भाषण मे सारे नगर की जनता उसके साथ हो गयी।

धनपाल : इस नगर की जनता बडी जोशीली है। नान-को-ऑपरेशन और सिविल-डिस-ओबीडियन्स के समय का स्मरण नही है ? पर, जोश ही जोश है, करने को कुछ नही। कन्हैयालाल तक सिविल-डिस-ओबीडियन्स में जेल

नही गया। (कुछ रुककर) हाँ, एक बात और जानते हो ?

दामोदरदास : क्या ?

धनपाल : इस प्रकाश से कन्हैयालाल बहुत घबडा गया है, उसकी राष्ट्रीय लीडरी के दिये को जैसे किसी ने फूँक मार दी है। आज प्रातःकाल मिला था।

दामोदरदास : क्या कहता था ?

धनपाल : कहता क्या था, रोता था। बोला कि उस दिन राजा साहब के यहाँ की पार्टी का और इतवार की पब्लिक मीटिंग का सच्चा वृत्तान्त न छापने के कारण उसके पत्र के बायकाट का आन्दोलन होने वाला है।

दामोदरदास : और विश्वनाथ तथा शहीदबख्श मुझसे मिले थे।

धनपाल : वे क्या कहते थे ?

दामोदरदास : वे भी घबड़ाये हैं। स्मरण है, उस दिन राजा साहब के यहाँ पार्टी मे शहीदबख्श विश्वनाथ से कहता था कि वह हिन्दुओ को सँभाले, मुसलमानो मे प्रकाश की दाल न गलेगी।

धनपाल : हाँ, अच्छी तरह स्मरण है।

दामोदरदास : पर उसने एक ही भाषण मे दोनो को मूँड डाला। (हँसकर) पडित और मौलाना को, अगले चुनाव मे, अपनी म्यूनिस्पैल्टी और कौंसिल की सीटे सुरक्षित नही दिखती। (बेपरवाही से) मुझे इसकी क्या चिन्ता ? चेम्बर ऑफ कामर्स जीता रहे।

धनपाल : (सिर हिलाते हुए) पर, भाई, मुझे तो विश्वनाथ और शहीदबख्श से अधिक चिन्ता है, वे तो रूरल से चुने

गये है, मैं तो अरवन से हूँ, जहाँ यथार्थ मे ये सारे आन्दोलन केन्द्रीभूत रहते हैं।

दामोदरदास : (बेपरवाही से) उँह, तुम्हे क्या, नया राज्य विधान आते ही तुम गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया की केबिनेट मे जाओगे।

धनपाल : (सिर हिलाते हुए) यह तो वाइसराय के हाथ की बात है।

दामोदरदास : बहुत कुछ गवर्नर के भी।

धनपाल : (गम्भीरता से) ये डार्विन की थियोरी के अनुसार मनुष्य के सच्चे प्रपितामह हैं, इनका कोई ठिकाना नही। ये किसके होते हैं ? मनुष्यता प्राप्त करने के लिए इनमें अभी और कुछ विकास की आवश्यकता है। (कुछ ठहरकर) हाँ, यह तो कहो, विश्वनाथ और शहीदवख्श इरीगेशन-स्कीम के लिए तो पक्के हैं न ?

दामोदरदास : उन्होंने उसके विरोध मे तो कुछ नही कहा, परन्तु डर अवश्य गये हैं। (कुछ ठहरकर) देखो, सब कुछ कैसा ठीक कर लिया था। कई ज़मीदार मेम्बरो के इस्टेट से होकर नहर आती इसीलिए वे समर्थन करते। हिन्दू-सभा को चंदा मिलता, इससे विश्वनाथ समर्थन करता और उसकी पार्टी के हिन्दू-मेम्बर, शहीदवख्श और उसकी पार्टी के मुसलमान-मेम्बरो को स्वय कुछ मिलता, इससे वे समर्थन करते। फिर डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड, ज़मीदार-एसोसिएशन की कार्यकारिणी, चेम्बर ऑफ कामर्स, बार-

एसोसिएशन, ह्यूमैनटेरियन लीग, लेडीज-एसोसिएशन सबने उसे ग्रामीणो के हित का सच्चा कार्य कहकर समर्थन किया था।

धनपाल : और डिपार्टमेट मे, मैंने सब कुछ करा लिया था। (धीरे से) यह तो तुम जानते ही हो कि पूरा पानी उसमे आयगा या नही, यह संदिग्ध विषय है, पर पब्लिक-वर्क्स-डिपार्टमेंट मेरे चार्ज मे ठहरा। फिर तुम इस महकमे, पुलिस, रेलवे आदि का वृत्तान्त जानते ही हो। किसी प्रकार सब ठीक हो गया था, पर · (कुछ ठहरकर) क्योजी, यह पानी की बात क्योकर जाहिर हुई ?

दामोदरदास : (भौंहे चढ़ाकर) मैंने तो यह बात रुक्मिणी तक से नही कही, क्योकि स्त्रियाँ ही ठहरी।

धनपाल : तब डिपार्टमेट से हुई होगी ?

दामोदरदास : जो कुछ भी हो, बडी बदनामी हुई और इतने पर भी कौंसिल से स्कीम के समर्थन का प्रस्ताव पास हो जाय तब की बात है।

धनपाल : मैंने तो तुमसे उसी दिन कहा था कि अब, जब तक एक सार्वजनिक सभा में उस स्कीम का समर्थन न करा लिया जाय, तब तक कौसिल मे प्रस्ताव को रखना ही ठीक नही है, और फिर यह भी शीघ्र कराना चाहिए, क्योकि प्रकाश का आन्दोलन बढता हुआ दिख रहा है।

दामोदरदास : परन्तु तुम तो कहते हो न कि गवर्नमेंट प्रकाश · ।

धनपाल : (बात काटकर) थोडा धीरे, पर, भाई, उस बात र तो विचारमात्र हो रहा है और फिर जैसा मैंने अभी

कहा था, उसके लिए तो राजा साहब से मिलना होगा, क्योंकि उन्ही की इस्टेट मे उसने काम आरम्भ किया है। राजा साहब विना नेस्टफील्ड के ठीक न होंगे और नेस्टफील्ड को तो तुम जानते ही हो, हजारों लिये विना, बात ही नही करता।

दामोदरदास : चाहे कुछ भी खर्च क्यो न हो जाय, नेस्टफील्ड को मैं ठीक करूँगा।

धनपाल : तब सब ठीक हो जायगा, पर फिर भी आम सभा तो बुलानी चाहिए।

दामोदरदास : पब्लिक मीटिंग तो मैंने ह्यूमैनटेरियन लीग की ओर से अगले इतवार को टाउनहाल में बुलायी है, आज ही नोटिस निकला है, परन्तु उसमे यदि प्रकाश की पार्टी आ गयी तो ?

धनपाल : (बेपरवाही से) हम पहले से ही टाउनहाल को अपने आदमियो से भर देंगे। टाउनहाल में तो निश्चित सख्या ही बैठ सकती है, और इतने पर भी वे गडबड करेंगे तो (कान में धीरे-धीरे कुछ कहकर) वह एक नया जुर्म भी उस पार्टी पर लग जायगा। (फिर धीरे से कुछ कहता है।)

दामोदरदास : (प्रसन्नता से) यह ठीक है।

धनपाल : (मुसकराकर) ये सब बातें मैंने पहले ही सोच ली थी, तब तुमसे मीटिंग बुलाने को कहा।

दामोदरदास : सभा का सभापति तुम्हे होना पडेगा।

धनपाल : मुझे !

दामोदरदास : क्यों ? मिनिस्टर सार्वजनिक सभा के सभापति नहीं हो सकते ?

धनपाल : हो क्यो नही सकते, और फिर मैं तो इस विषय मे कितना आगे बढा हुआ हूँ, यह तुम जानते ही हो। मैं सभापति हो जाऊँगा। प्रस्ताव तुम रखना। अनुमोदन और समर्थन विश्वनाथ तथा शहीदबख्श करे।

दामोदरदास : मेरी ही स्कीम और मैं ही प्रस्ताव रखूँ ?

धनपाल : दूसरा उस स्कीम को समझा न सकेगा, फिर आजकल तो यह पार्लियामेंटेरियन एटीकेट हो गया है। देखते नही, कौसिल मे जितनी कमिटी और सबकमिटी नियुक्त होती हैं, उसके मेम्बरो की सूची में प्रस्तावक अपना नाम भी प्रस्तावक की हैसियत से जोड लेता है।

दामोदरदास : अच्छी बात है, प्रस्ताव मैं रख दूँगा और प्रयत्न भी करूँगा कि पडित और मौलाना समर्थन करे, पर देखना यह है कि वे समर्थन करते हैं कि नही।

धनपाल : (सिर हिलाते हुए) नही, नहीं, यह तो उनसे कराना ही होगा।

[रुक्मिणी का एक खानसामे के संग शैम्पीन की बोतल (डिकैन्टर) और ग्लास (पेग) लिये हुए प्रवेश। खानसामा शैम्पीन टेबिल पर रखकर चला जाता है। रुक्मिणी बैठ जाती है। तीनो ग्लास भरते हैं।]

धनपाल : मिस्टर गुप्ता के जन्म-दिवस के हर्ष मे, लाँग लिव मिस्टर गुप्ता। (पीता है। दामोदरदास और रुक्मिणी भी हँसते हुए पीते है।)

दामोदरदास : (घड़ी देखकर) हलो! इट इज आलरेडी नाइन!
(रुक्मिणी से) डियर, तुम्हे वडी देर लगी।

रुक्मिणी टेट की व्यवस्था मे कुछ रद्दोवदल कराया, इसी से थोडी देर हो गयी।

दामोदरदास : अव तो मेहमानो के आने का भी समय हुआ।,

धनपाल : (दाहिनी ओर देखकर) देअर इट इज, डॉक्टर नेस्टफील्ड और मिस थेरिजा पहुँच ही गये।

[दामोदरदास और धनपाल के सदृश ईवनिंग-सूट पहने नेस्टफील्ड और उसी के साथ थेरिजा का प्रवेश। दामोदरदास, धनपाल और रुक्मिणी उठते है और नेस्टफील्ड तथा थेरिजा से हाथ मिलाते है। ये लोग दामोदरदास और रुक्मिणी को दामोदरदास के जन्म-दिवस की वधाई देते है। ये दोनों धन्य-वाद देते है। सब लोग कुर्सियो पर बैठ जाते है। इतने में दूसरे मेहमान आते हैं। दामोदरदास स्वागत को उठता है। मेहमानो का ताँता लग जाता है। कुछ ही देर में कई अँगरेज, कई मेमें, कई हिन्दुस्थानी पुरुष और स्त्रियाँ पहुँचती हैं। सब लोग एक-एक कर दामोदरदास और रुक्मिणी को वधाई देते है और ये लोग सब को धन्यवाद देते हैं। सभी पुरुष ईवनिंग-सूट पहने है तथा खुले सिर है। स्त्रियाँ तरह-तरह के सुन्दर कपड़े पहने है। कुछ बैठते है, कुछ नाचने जाते हैं। रुक्मिणी और धनपाल तथा थेरिजा और दामोदरदास भी नाचते हैं। खानसामे मिठाई, मदिरा, सिगरेट आदि लेकर घूमते हैं। परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान : प्रकाशचन्द्र के घर का बाहरी भाग

समय : रात्रि

[हाथ में मिठाई की रकाबी लिये तारा का तथा उसी के साथ प्रकाशचन्द्र का प्रवेश। दोनों अपनी साधारण वेश-भूषा में हैं। तारा मिठाई की रकाबी रखकर बैठ जाती है। उसी के निकट प्रकाशचन्द्र बैठ जाता है।]

तारा : बेटा, अब शीघ्र खा। आज भी देख तूने कुछ नहीं खाया। उस दिन की सार्वजनिक सभा के पश्चात् तू कुछ खाता ही नहीं है। क्या नेता हो जाने से बड़ा हर्ष हो गया है, इसी हर्ष में खाना अच्छा नहीं लगता ?

प्रकाशचन्द्र : (गम्भीरता से) हर्ष तो तनिक भी नहीं है, माँ, हाँ, एक विलक्षण प्रकार के भार का अनुभव अवश्य होता है।

तारा : अच्छा, खाना तो प्रारम्भ कर, और भार कैसा है, यह भी बता।

प्रकाशचन्द्र : (मिठाई खाते हुए) वैसी स्वच्छदता अब नहीं जान पड़ती; जैसी रवि वार के पूर्व थी।

तारा : तब ?

प्रकाशचन्द्र : दिन-रात ऐसा जान पड़ता है कि ससार भर का भार मेरे ही कधो पर रखा है, साथ ही साथ, कार्य करने को अधिक है और समय है कम। फिर हृदय से कोई वस्तु हटती-सी जान पडती है।

तारा : वह मैं होऊँगी।

प्रकाशचन्द्र : नही, माँ, तू तो प्रत्येक वात अपने ऊपर ले लेती है। वह तू नही है, कदापि नही, वह सुख, जिस सुख का मैंने उस दिन भाषण मे वर्णन किया था। तू जानती है, उस दिन मैंने क्या कहा था ?

तारा : तूने मुझे कहाँ वताया ?

प्रकाशचन्द्र : मैंने कहा था कि अजयसिंह, दामोदरदास, विश्वनाथ, शहीदबख्श किसी के मुख पर सुख के चिन्ह नही हैं। क्यो, माँ, क्या मेरे मुख पर के सुख के चिह्न भी अव लुप्त हो गये ? अव मैं दर्पण मे जब अपना मुख देखता हूँ, तव उसे वैसा तो नही पाता, जैसा रविवार के पूर्व पाता था। तूने मेरा मुख जन्म-काल से ही देखा है, तू सबसे अधिक वता सकती है।

तारा : अवश्य अन्तर है, बेटा. और हर क्षण यह अन्तर बढता ही जाता है, तभी तो, बेटा, उस दिन मैंने तुझसे कहा था कि हम लोग गाँव को लौट चले।

प्रकाशचन्द : यह वात तो करना ही निरर्थक है, माँ। तेरी ही शिक्षाएँ हृदय में ऐसी भिद गयी हैं कि मेरे लिए आगे पैर

रखने के पश्चात् उसे पीछे हटाना असम्भव है।

तारा : तब तो यह मुख का अन्तर बढता ही जायगा, बेटा।

प्रकाशचन्द्र : बढने दे, और तू उस अन्तर को देखने के लिए अभी से तैयार हो जा। देख, माँ।

तारा : कह, क्या कहता है ?

प्रकाशचन्द्र : जिस प्रकार मुझे ग्रामीण और नगर के जीवन में अन्तर दिखता है, उसी प्रकार का अब दूसरा अन्तर अकर्मण्य और कर्मण्य जीवन मे अनुभव हो रहा है। कुछ ही दिनो मे मेरा मुख भी अजयसिह आदि के सदृश हो जायगा।

तारा : तेरा, ओह ! बेटा !

प्रकाशचन्द्र: (जल्दी से मुँह चलाना बंद कर) नही, नहीं, भूल गया, माँ। ठहर जा, अजयसिह आदि के सदृश ! (कुछ ठहरकर) अजयसिह आदि के सदृश मेरा मुख ! मेरा मुख कदापि वैसा नही हो सकता। मुख पर शोक, षड्यन्त्र, चिन्ता आदि का साम्राज्य है, मेरे मुख पर वह कैसे हो सकता है ? हाँ, मेरा मुख, अब तक जैसा रहा है, वैसा रहना अब सम्भव नही है।

तारा : तब ?

प्रकाशचन्द्र : वह स्वच्छन्द, वैसा अकर्मण्य अब न रहेगा, परन्तु वह पापियो के सदृश, स्वार्थियों के सदृश, कलुषित और चिन्तित क्योकर हो सकता है ? उस पर अकर्मण्यता और स्वच्छन्दता के स्थान पर कर्मण्यता और

कर्त्तव्यपरायणता के चिह्न होगे, दु ख, षड्यन्त्र और चिन्ता के नही।

तारा : अच्छा, खाना क्यो बन्द कर दिया ? खाता भी तो जा।

प्रकाशचन्द्र : (फिर मिठाई उठाकर खाते हुए) यह अन्तर तो, माँ, खेद की बात नही है। प्राकृतिक जीवन तक एक-सा नही है। (फिर मुँह चलाना बद कर) उषा का मद प्रकाश कुछ ही क्षणो मे दिन का प्रचड ताप हो जाता है। आसन्न सध्या की प्रभामय श्यामता कुछ ही घडियो मे रात्रि की भयकर कालिमा हो जाती है। वसन्त के सग जिस ग्रीष्म का परोक्ष रीति से आगमन होता है, और जो उस समय आनन्ददायक प्रतीत होती है, वही ज्येष्ठ मे निदाघ का भयकर रूप धारण करती है। आषाढ के उठते हुए छोटे-छोटे मेघ भीषण गरजनेवाली घटायें हो जाते हैं और छोटी बरसनेवाली बूँदो से भारी-भारी सरिताओ मे पूर आ जाता है। शरद् के सग जिस सुहावनी शीत का पदार्पण होता है, वही हेमन्त मे दाँतो को कँपानेवाला जाडा हो जाती है।

तारा : अभी तो ठड नही है, फिर मिठाई पर दाँत चलाना क्यो बन्द कर दिया।

प्रकाशचन्द्र : (मुसकराकर मुँह चलाते हुए) शान्त महासागर मे काल पाकर ज्वार आता है और मन्द-मन्द चलने वाली वायु से उठती हुई छोटी-छोटी तरगें भयकर कल्लोलो का स्वरूप ग्रहण करती हैं। द्वितीया को

उदय होनेवाली चन्द्र-रेखा पूर्णचन्द्र का विम्व हो जाती है। निकलती हुई कली का वन्द मुख खुलकर पुष्प हो जाता है और वही पुष्प काल पाकर अपनी विकसित पँखड़ियो को छोड वीज का रूप धारण करता है। वाल्यावस्था का भोला मुख यौवन के देदीप्यमान मुख मे परिणत हो जाता है और वृद्धावस्था पाकर उसी देदीप्यमान मुख पर झुर्रियाँ पड जाती हैं। (चुप होकर मिठाई खाता है।)

तारा : यह तो ठीक है। प्रत्येक वस्तु मे उत्पत्ति के पश्चात् शनै. शनैः परिवर्तन होता है, क्योकि परिवर्तन ससार का नियम है।

प्रकाशचन्द्र : फिर, माँ, तेरा प्रकाश ही एक-सा कैसे रह सकता है? उसके हृदय के भाव और उन भावों का दर्पण मुख ही क्योकर एक-सा रह सकता है? रहना भी नही चाहिए। नदी का प्रवाह ही निर्मल रह सकता है, पोखरे का रुका हुआ पानी गँदला हो ही जायगा। हाँ, एक बात अवश्य है।

तारा : वह क्या?

प्रकाशचन्द्र : कुछ परिवर्तन अच्छाई से बुराई की ओर जाते हैं और कुछ वुराई से अच्छाई की दिशा मे, कुछ जीवन से मृत्यु की ओर, और कुछ जडता से चैतन्य की। तेरे प्रकाश का परिवर्तन, माँ, दूसरे प्रकार का है। वह है अकर्मण्यता से कर्मण्यता और स्वच्छन्दता से कर्त्तव्य-

परायणता की ओर। (चारो ओर देखकर) पानी लाना तू फिर भूल गयी।

[तारा शीघ्रता से जाती है और पानी का ग्लास लेकर आती है।]

प्रकाशचन्द्र : (थोड़ा-सा पानी पीकर) तो फिर यह सिद्ध हो गया न, माँ, कि मेरे मुख का परिवर्तन तो हर्ष की बात है, चिन्ता की नही। मुझे यह विश्वास है कि मेरा यह परिवर्तन तेरे दुःख से द्रवीभूत हृदय मे भी परिवर्तन लाये बिना न रहेगा। पुत्र की कर्तव्य-परायणता माता के हृदय-सागर मे भी हर्ष की हिलोर उठाए बिना नही रह सकती। माँ, तेरे मुख पर मैं वह परिवर्तन कब देखूँगा ?

तारा : बेटा, तुझे क्या हो गया है ? तू मेरी शिक्षाओ की बात करता है, परन्तु तू तो उनके बहुत आगे बढता जा रहा है।

प्रकाशचन्द्र : (फिर मिठाई खाकर) यह तो होना ही चाहिए, माँ। बीज सदैव छोटा-सा होता है, किन्तु पृथ्वी मे बो देने के पश्चात् वही पानी पाकर वृक्ष के रूप मे परिणत हो शनै. शनै बढता है, पल्लवित, पुष्पित और फलित होता है।

तारा : तो मेरी शिक्षा पल्लवित, पुष्पित और फलित हो रही है।

प्रकाशचन्द्र : अवश्य, यदि शिक्षा ठीक प्रकार दी जाय और उसी प्रकार ग्रहण की जाय तो उसे भी पानी का कार्य

करना चाहिए। यदि वह यह न करे तब तो उसे सच्ची शिक्षा नही कहनी चाहिए।

तारा : (रूखी हँसी हँसकर) तुझसे तो अब वात करना कठिन होता जाता है, बेटा!

प्रकाशचन्द्र : (तारा के मुँह को अच्छी तरह देखकर) क्यो, माँ, तू सच्चे हर्ष से एक बार भी नही हँस सकती? देख तो, कैसी रूखी हँसी हँसती है। तेरी इस हँसी से तो तेरे आँसू ही अधिक स्वाभाविक हैं, मुझे वे अधिक सुन्दर दिखते हैं। यह हँसी तो मुझे भयानक प्रतीत होती है। या तो सच्चे हर्ष से हँसा कर, या तू कभी हँसा ही न कर। स्वाभाविकता ही सौंदर्य का प्राण है।

तारा : (लंबी साँस लेकर) बेटा, सच्चे हर्ष की हँसी! आह! स्मरण तो है, कभी आती थी। परन्तु, बेटा, उसे बहुत समय बीत गया, बहुत अधिक समय। पुरानी, बहुत पुरानी बात है। आह! बेटा, वे दिन! वे दिन स्मरण न करना ही अच्छा है, करने से और अधिक क्लेश होता है।

प्रकाशचन्द्र : तुझे काहे का दुःख है, माँ, यह तूने मुझे कभी नही बताया?

तारा : (होठों पर अँगुली रखकर) वह बात न कर, बेटा, कभी बताया नही और कभी बताऊँगी भी नही। यदि वह बात करेगा, तो यहाँ से उठकर चली जाऊँगी।

प्रकाशचन्द्र : अच्छा, जाने दे। क्या मै माँ को कष्ट पहुँचा सकता हूँ। (पानी पीकर उठते हुए) अच्छा, हाथ धुला दे।

[दोनों का प्रस्थान । तारा जूठी रकाबी और ग्लास उठा ले जाती है । दोनों का पुनः प्रवेश ।]

प्रकाशचन्द्र : आज, माँ, गोद मे न सुलायगी ? अप्रसन्न है क्या ?

तारा : (प्रकाशचन्द्र को गोद में लिटाते हुए) कैसी बात करता है बेटा ? अप्रसन्न ! तुझसे अप्रसन्न ! आज तक तूने ऐसी बात न कही थी । आज तो बडी भारी बात कह दी ।

प्रकाशचन्द्र : और कभी अप्रसन्न होवेगी भी नही ?

तारा : (कातर स्वर में) इस दु ख, महान् दु ख, आकाश से अनत दु ख, सागर से असीम दु ख, काल से अशेष दु:ख के सुख, इस टूटी हुई कमर के सहारे, फूटी हुई आँखो के तारे, मसोसे हुए हृदय के रहे-सहे भाव, आत्मा के शेष बल और शरीर के अवशेष पुरुषार्थ, तुझसे अप्रसन्न होऊँगी ? तुझसे अप्रसन्न ?

प्रकाशचन्द्र : (गोद में अच्छी तरह लेटते और तारा के गले में हाथ डालते हुए) माँ, इस गोद मे जो अलौकिक, जो अपार और जो अवर्णनीय सुख मिलता है, वह कही नही ।

तारा : कही नही ; बेटा ?

प्रकाशचन्द्र : हाँ, कही नही, माँ, कई बार तो नगर की भीड़ से भरे हुए मार्ग मे चलते हुए, इस गोद का स्मरण हो आता है, कभी मित्रो के कोलाहलपूर्ण सग मे इस गोद की याद आ जाती है, कभी-कभी तो भाषण देते हुए इस गोद का ध्यान आ जाता है ।

तारा : भाषण देते-देते !

प्रकाशचन्द्र : हाँ, भाषण देते-देते, माँ। उस दिन रविवार को भाषण मे, जिस समय तेरी चर्चा की, इस गोद का स्मरण हो आया। तू निकट न थी, नही तो सच मान, अधूरा भाषण छोड़, एक बार इस गोद में लेट लेता, तब भाषण पूर्ण करता, माँ, माँ। (तारा का मुँह देखता है।)

तारा : (आँसू बहाते हुए प्रकाशचन्द्र को देखकर) मेरे नेत्रो के प्रकाश, मेरे हृदय के प्रकाश, मेरी आत्मा के प्रकाश, मेरे चन्द्र, बेटा, बेटा।

प्रकाशचन्द्र : (उठकर एकटक तारा को देखते हुए) आह! कैसा अलौकिक मुख है! कैसा अलौकिक सौंदर्य है! कैसी अलौकिक मुद्रा है! (आँसू भर आते हैं। कुछ देर के लिए निस्तब्धता छा जाती है।)

प्रकाशचन्द्र : (नेत्रो में भरे आँसुओं को पोछ, धीरे-धीरे) माँ, तूने एक नयी बात सुनी है?

तारा : (आँखें पोंछ, घबड़ाकर) क्या, और कोई आपत्ति है? यह तो तूने बताया था कि राजा के इस्टेट मे कार्य आरभ हो गया है और दामोदरदास की बहन तथा सुशीला भी तेरे समाज की सदस्या हुई हैं।

प्रकाशचन्द्र : यह तो मैंने सोमवार को ही बता दिया था। एक बात नयी सुनकर आया हूँ।

तारा : (और भी घबड़ाकर) वह क्या?

प्रकाशचन्द्र : आगामी रविवार को टाउनहाल मे ह्यूमैनटेरियन लीग की ओर से एक सार्वजनिक सभा होगी।

तारा : उसमे क्या होगा ?

प्रकाशचन्द्र : वही नहर की शुष्क योजना का प्रवाह बहाया जायगा।

तारा : सभा किसने बुलायी है ?

प्रकाशचन्द्र : मैंने कहा न ह्यूमैनटेरियन लीग की ओर से होगी।

तारा : यह कौनसी वस्तु है ?

प्रकाशचन्द्र : यह मनुष्यमात्र को सुख पहुँचानेवाली एक सस्था है।

तारा : अच्छा, तब तो यह बहुत बडी वस्तु है। इसके कोई कर्ता-धर्ता भी तो होगे ?

प्रकाशचन्द्र : वे ही दामोदरदास आदि हैं।

तारा · ऐसे लोग मनुष्यमात्र को सुख पहुँचाने का उद्योग कर रहे हैं ?

प्रकाशचन्द्र : ये ऐसे लोग हैं, माँ, जिनके शब्द पर्वत-शिखर पर रहते हैं, पर कृतियाँ अन्ध गर्त मे। सभी सस्थाएँ इन्ही लोगो के हाथो में तो हैं। इन सस्थाओ से जनता को लाभ अवश्य हो सकता है, पर इन लोगो को तो अपने लाभ की पडी रहती है, और वह भी जनता के नाम पर। सबसे अधिक विचित्र बात तो यह है कि यहाँ की इस परिस्थिति को यहाँ के सब लोग स्वाभाविक मानते हैं और इस आश्चर्यजनक परिस्थिति पर किसी को कोई आश्चर्य नही होता।

तारा : तो इन्ही लोगो ने सभा बुलायी है ?

प्रकाशचन्द्र : हाँ।

तारा : फिर तुझे इस सभा से क्या प्रयोजन है ?

प्रकाशचन्द्र : (दृढ़ता से) वाह ! माँ, वाह ! यहाँ जो कुछ भी होगा उस सबसे हमारे सत्य-समाज को प्रयोजन है। हर बात का सच्चा स्वरूप प्रकट करना ही तो इस समाज का कार्य है। बिना सच्चा स्वरूप जाने, बुरी वस्तु तो क्या, अच्छी वस्तु की उन्नति तक सम्भव नही। हमारा सत्य-समाज यदि मूक और असहाय जनता के लिए हिम के सदृश शीतल है तो इन वाचाल और स्वार्थी जनो के लिए अग्नि के समान तप्त।

तारा : (घबड़ाकर) तो वहाँ भी तुम लोग जाओगे ?

प्रकाशचन्द्र : (और भी दृढ़ता से) इतना ही नही, उस योजना के प्रवाह के भीतरी सच्चे प्रवाह का दिग्दर्शन करायेंगे। वे लोग उसके बाहरी प्रवाह को प्रवाहित करेंगे और हम उसके भीतरी प्रवाह को।

तारा : और उन्होंने टाउनहाल में न घुसने दिया तो ?

प्रकाशचन्द्र : बहुत पहले जाकर वहाँ बैठ जायँगे।

तारा : और बलपूर्वक बाहर निकाल दिया तो ?

प्रकाशचन्द्र : तूने मुझे महात्मा गाधी के सत्याग्रह की बात बतायी थी न ?

तारा : हाँ, बतायी तो थी।

प्रकाशचन्द्र : उनके असहयोग का उपयोग अजयसिंह के प्रीति-भोज मे किया था और सत्याग्रह का टाउनहाल मे करूँगा।

तारा : (बहुत ही घबड़ाकर) आह ! बेटा, आह ! बेटा, मैंने यह सब तुझे उपयोग करने के लिए थोडे ही बताया था।

प्रकाशचन्द्र : किसी वस्तु को जान लेना और ठीक समय उसका

उपयोग न करना तो कायरो का काम है। ज्ञान और कृति के बीच में यहाँ आकर जो एक तीसरी वैज्ञानिक वस्तु 'चिन्तना' सुनी है, और जिसने मनुष्यो को प्राय अकर्मण्य एव कायर बना दिया है, वह कम से कम मेरे पास तो नही है, माँ।

तारा : (घबड़ाकर उठते हुए) बेटा, बेटा, तू नही जानता कि तू क्या कर रहा है। तूने यहाँ के समाज-सागर मे भयकर ज्वार उठा दिया है और अब छोटे से डोगे पर बैठ उसे पार करना चाहता है। आह ! मुझे तो चक्कर आता है, मैं तो अपनी खटिया पर पडती हूँ।

प्रकाशचन्द्र: माँ, माँ, तू तो बहुत घबडाती है, अभी तो कार्य का आरम्भ ही हुआ है।

तारा : पर, तेरे कार्य ही ऐसे हैं।

प्रकाशचन्द्र: मेरे कार्य ही क्यो, सारा ससार ही एक प्रकार का युद्ध-क्षेत्र है। एक ओर सत्य, न्याय, स्वातत्र्य और त्याग है, दूसरी ओर असत्य, अन्याय, दासता और स्वार्थ है। ससार मे हर मनुष्य को किसी न किसी ओर होकर इस युद्ध मे भाग लेना ही पडता है। प्रथम ओर के लोग सज्जन और दूसरी ओर के लोग दुर्जन हैं। तटस्थता का आरोप दिखानेवाले कायर हैं, जो कि प्रति क्षण मृत्यु का अनुभव करते हैं। माँ, तुझे तो धैर्य का अवलम्बन करना चाहिए।

[तारा का जल्दी से प्रस्थान। प्रकाशचन्द्र भी उसी के पीछे जाता । परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान मनोरमा के कमरे की दालान

समय . प्रातःकाल

[दालान की बनावट वैसी ही है जैसी रानी कल्याणी के कमरे की दालान की थी। रंग उससे भिन्न है। रुक्मिणी और मनोरमा टहलती हुई बातें कर रही है। दोनो अपनी साधारण वेश-भूषा में है।]

मनोरमा : परन्तु, भाभी, भारत को विलायत के सदृश बनाने का प्रयत्न क्यो होना चाहिए, यही मेरी समझ मे नही आता।

रुक्मिणी : इसलिए कि वह दुनिया का आदर्श देश है। क्या तुम ससझती हो कि भारत का कल्याण, जैसा भारत है, वैसा ही बने रहने मे है ?

मनोरमा : यह मैं कहाँ कहती हूँ ? परन्तु भारत का कल्याण, भारत के विलायत बनने मे अवश्य नही है। देखो, भाभी, प्रत्येक देश के सामने उसकी प्राकृतिक और व्यावहारिक परिस्थितियो के अनुसार उसकी निज की कुछ समस्याएँ रहती हैं।

रुक्मिणी : मानती हूँ, रहती हैं।

मनोरमा : भारत की प्राकृतिक तथा व्यावहारिक स्थिति विलायत से भिन्न है। यह उष्ण देश है, यहाँ के लोगो की रहन-सहन ठण्डे देश मे रहनेवालो के सदृश हो जावे तो लोगो का जीवन सुखी और स्वाभाविक नही रह सकता। यहाँ की व्यावहारिक परिस्थिति भी वहाँ से सर्वथा भिन्न है। इस देश का प्राचीन इतिहास है, प्राचीन धार्मिक, सामाजिक आदि सिद्धान्त हैं, प्राचीन सस्कृति है, उनको पूर्ण रूप से मिटाकर उन पर पश्चिमी सिद्धान्तो का लादा जाना असभव है। दूसरे शब्दो मे यह प्रयत्न भारत के निज के पैर काटकर दूसरे के पैरो पर उसे चलाना है। फिर तुम क्या यह समझती हो कि विलायत-निवासी हर प्रकार से सुखी हैं ? उनके सामने कोई समस्या ही हल करने को नही है ?

रुक्मिणी : मुझे तो वे हर तरह से सुखी दिखायी दिये। यह मैं नही कहती कि उनके सामने कोई समस्या हल करने को ही नही है, लेकिन समस्याएँ ससार के सब देशो और समाजो के सम्मुख हैं। विलायतवालो की समस्याएँ हमारे देश की समस्याओ के सम्मुख नही के बराबर हैं।

मनोरमा : इस देश मे विलायत से अधिक समस्याएँ हल करने को हैं, इसे मैं मानती हूँ, परन्तु उस देश मे नही के बराबर समस्याएँ हैं, इसे मैं नही मानती। अनेक

जटिल समस्याओ के कारण वहाँ का सारा जीवन ही उथल-पुथल हो रहा है।

रुक्मिणी : दो-चार समस्याएँ गिनाओ तो।

मनोरमा : एक वात के अन्तर्गत ही वहाँ की सारी जटिल समस्याएँ आ जाती हैं।

रुक्मिणी : वह कौनसी वात है ?

मनोरमा : आधिभौतिकवाद को सर्वस्व मान लेना, कार्ल-मार्क्स का साम्यवाद, मुसोलिनी का फ़ैसिस्टवाद और हिटलर का नाज़ीवाद सब आधिभौतिकवाद की नीव पर स्थित हैं। मनुष्यत्व वहाँ रह ही नही गया, हर वात की तौल सिक्कों के अनुमान पर होती है। जिस पुरुष और स्त्री-समाज के स्वातन्त्र्य की तुम इतनी प्रशसा कर रही हो, उस स्वातन्त्र्य ने ऐसा भयानक रूप धारण किया है कि सच्चे गार्हस्थ्य सुख का भी वहाँ पता नही है।

रुक्मिणी : (ताने से) ये सारी वाते तुम यहाँ वैठी-वैठी कर रही हो, वीवी, मैंने तो इग्लैण्ड, फ्रास, जर्मनी आदि का जीवन खुद देखा है। समाचारपत्रो में ये वाते चाहे कितनी ही प्रधानता से छापी जावे, वहाँ के जीवन में इनकी छाया तक नही दिखती।

मनोरमा : तुम वहाँ के सामाजिक जीवन मे घुसी नही, भाभी। वहाँ के सामाजिक जीवन में ऊपर से चाहे कितना ही सुख दिखता हो, परन्तु यहाँ वैठे-वैठे ही वहाँ के सम्बन्ध मे मैंने जो कुछ पढा है और उस पर

मनन किया है, उससे मुझे निश्चय है कि यह सारी अग्नि भीतर ही भीतर सुलगकर वहाँ के जीवन को भस्म कर रही है।

रुक्मिणी : मैं तो नही मानती।

मनोरमा : क्योकि तुमने भीतरी रूप ही नही देखा। माया का रूप ऊपर से वडा सुन्दर दिखायी देता है, परन्तु हम यदि उसका भीतरी स्वरूप देखे तो हमें मालूम होगा कि वह कितना भीषण है। ससार मे नेत्रो से देखना ही सब कुछ नही होता, भाभी, चर्मचक्षुओ से देखने की अपेक्षा समस्याओ के अध्ययन और मनन को कही अधिक महत्त्व है।

रुक्मिणी : (कुछ चिढ़कर) तो तुम समझती हो इस देश के रहनेवाले विलायतवालो से अधिक सुखी हैं ?

मनोरमा : यह मेरा अभिप्राय नही है। मैं तो यह कहती हूँ कि भारत को विलायत बनाने का प्रयत्न इस देश के निवासियो को अधिक सुखी नही बना सकता।

रुक्मिणी : तो इस देश मे ही कूप-मण्डूक के सदृश बैठे रहना और कही न जाना ही ठीक है ?

मनोरमा : तुम तो बात को दूसरी ओर ले जा रही हो। विवाद के समय बात सदा अपनी सीमा के भीतर ही रखनी चाहिए। मेरे मतानुसार भी कूप-मण्डूक बने रहना बुरी बात है। मनुष्य को देश-देशान्तर का पर्यटन अवश्य करना चाहिए।

रुक्मिणी : फिर ?

मनोरमा : पर देशाटन करके हर वस्तु के भीतर घुसकर उसे देखना चाहिए। हर वस्तु को ऊपर से देख उसी का अनुकरण करने लगना, और उसी के सदृश सारे समाज को बनाने का प्रयत्न करना, तो बड़ी भयानक बात है।

रुक्मिणी : तो तुम समझती हो पश्चिम की सारी बातें बुरी हैं ?

मनोरमा : कौन कहता है ? अनेक बाते बहुत अच्छी हैं और अनुकरण करने योग्य हैं। किसी भी समाज की हर बात बुरी नही होती।

रुक्मिणी : फिर कौन अनुकरण करने लायक है और कौन नही, इसका निर्णय क्योंकर किया जाय ?

मनोरमा : (मुसकराकर) यही निर्णय करना तो सबसे कठिन बात है। एक दृष्टान्त देती हूँ।

रुक्मिणी : कैसा ?

मनोरमा : आजकल के पढे-लिखे पश्चिमी विचारों के भारतीय समझते हैं कि जनता की आवश्यकताएँ बढाना सभ्यता की नीव और सभ्यता की ओर बढने की पहली सीढी है।

रुक्मिणी : ज़रूर।

मनोरमा : मैं समझती हूँ नीव ही ठीक नही है, फिर उस पर बना हुआ भवन कैसे ठीक हो सकता है। मेरे मतानुसार तो इस प्रयत्न से यहाँ के समाज मे घोर सकट फैलेगा।

रुक्मिणी : (घृणा से हँसकर) तो तुम समझती हो कि यहाँ के लोगो को हमेशा पशुओ के समान रहना चाहिए।

मनोरमा : किसे पशुओ के समान रहना कहना चाहिए और किसे देवताओ के समान, यही तो प्रश्न है। आधिभौतिक सुखो की निरन्तर बढती हुई अभिलाषाएँ और आध्यात्मिक सुखो का निरन्तर ह्रास, क्या यही देवताओ के सदृश रहना है ?

रुक्मिणी : और तुम समझती हो, स्त्रियो की रहन-सहन मे भी परिवर्तन की कोई जरूरत नही ? पुरुष-समाज का स्त्री-समाज पर इस तरह का अत्याचार, उन्हे परदे मे सड़ाना, उन्हे बाल-विधवाएँ बनाए रखना, ये सब उचित हैं ?

मनोरमा : फिर तुम बात दूसरी ओर ले चली। ये सब बातें मैं स्वय भी अच्छी नही मानती। मैं मानती हूँ कि स्त्री और पुरुष दोनो ही वर्गों मे कई विकट समस्याएँ हल करने को हैं। मेरा कहना तो केवल यह है कि पश्चिम का अन्ध अनुकरण इन समस्याओ को हल नही करेगा। किसी रोग की औषधि उससे भी भयकर दूसरे रोग का निमन्त्रण नही है। मैं मानती हूँ, परदा बहुत बुरी वस्तु है, मैं स्वीकार करती हूँ, बाल-विवाह बहुत बुरी प्रथा है, विधवा-विवाह की आवश्यकता को मैं समझती हूँ, परन्तु इसी के साथ जिस प्रकार की स्वतन्त्रता आजकल पश्चिमी ढँग से पढी-लिखी कुछ भारतीय रमणियाँ ले रही हैं, वैसी स्वतन्त्रता तो मैं भारतीय स्त्री-समाज के लिए हितकर नही मानती।

रुक्मिणी : तुम कौन कम स्वतन्त्रता लेती हो, बीबी। सार्व-

जनिक सभा में जाती हो; प्रकाशचन्द्र के सत्य-समाज की सदस्या हुई हो, ऐसे समाज की, जो तुम्हारे घर के लोगों की ही जड खोद रहा है। यह सब स्वतन्त्रता नही है तो और क्या है ?

मनोरमा : आजकल के पश्चिमी विचारोवाली रमणियाँ जैसी स्वतंत्रता लेती हैं उसका, और इस स्वतन्त्रता का, क्या मिलान हो सकता है ?

रुक्मिणी : क्यो ?

मनोरमा : क्योकि जो स्वतन्त्रता अपने साढे तीन हाथ के शरीर के विषय भोगो के लिए ही ली जाती है, उसमें, और समाज के उपकार के लिए ली गयी स्वतन्त्रता मे, बहुत बडा अन्तर है। रहा सत्य-समाज की सदस्या होना, सो इस स्थान ने किसी पर व्यक्तिगत असत्य आक्षेप नही किया। यदि भाई साहब के और तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहा तो क्या तुम कह सकती हो कि वह झूठ था ?

रुक्मिणी : बिल्कुल झूठ।

मनोरमा : पर मैं तो उसे सत्य मानती हूँ; और जब मैं उसे सत्य मानती हूँ तब उसका समर्थन मेरा कर्तव्य हो जाता है। सत्य बात चाहे घर के लोगो के विरुद्ध कही जाय, चाहे संसार मे किसी के भी विरुद्ध, उसका समर्थन करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य होना चाहिए और यह सदा से भारतीय आदर्श रहा है।

रुक्मिणी : (बहुत चिढ़कर) अच्छा, तो आप अब भारतीय

दृष्टि से आदर्श महिला बननेवाली हैं।

मनोरमा : मुझ मे वह सामर्थ्य कहाँ, पर हॉ, मनुष्य को अपने सम्मुख आदर्श सदा उच्च ही रखना चाहिए।

रुक्मिणी : जाने दो, तुम्हारे सिद्धान्त तुम अपने पास रखो, मेरे सिद्धान्त मेरे पास रहने दो। तुम कुछ मेरी मास्टरनी नही हो। कॉलेज मे पढनेवाली आजकल की छोकरियो से कौन जीत सकता है ? मुझे दूसरा काम है।

[रुक्मिणी का जल्दी से प्रस्थान। परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

स्थान दामोदरदास गुप्ता के कमरे की दालान

समय . प्रात काल

[दालान वैसी ही है जैसी रानी कल्याणी और मनोरमा के कमरो की थी, परन्तु इसका रंग उन दोनो से भिन्न है। दामोदरदास का सबेरे के अँगरेजी कपड़ो (मॉर्निंग-सूट) में छड़ी लिये हुए प्रवेश।]

दामोदरदास : (जोर से) चपरासी ! चपरासी !

[चपरासी का प्रवेश, वह सलाम करता है।]

दामोदरदास : (सलाम का उत्तर देकर) लाला साहब को सलाम दो; कहना, गुप्ता साहब को बहुत आवश्यक कार्य से बाहर जाना है और आपसे तत्काल दस मिनिट को मिलना चाहते हैं।

[चपरासी का सलाम कर प्रस्थान। दामोदरदास इधर-उधर टहलता है। कुछ देर में भगवानदास का प्रवेश। भगवानदास एक मैली धोती पहने है, उसी को आधी ओढ़े हैं। मोटा-सा मैला जनेऊ कान पर चढ़ाए है। हाथ में टीन का बर्तन है।]

दामोदरदास : (भगवानदास को सिर से पैर तक देख, भौंहें

चढ़ा, क्रोध से) ओह, फादर, यह आप किस प्रकार आये हैं ? आपको सोचना चाहिए कि आप नाइट हो गये हैं। इस प्रकार घूमने-फिरने से तो मेरी बडी बेइज्ज़ती होती है। हाथ मे टीन का कनस्टर और इतनी मैली धोती ! इस धोती से तो यहाँ तक बू आती है। (नाक में रूमाल लगाता है।)

भगवानदास : (डरते हुए) मैं तो पैथाने से आया हूँ, हाथ तत नही धोए। सिपाई पहुँता और तहा ति तुम दल्दी बुलाते हो, तुम तो बाहर दाना है, दौरा-दौरा यहाँ आ दया।

दामोदरदास : यह तो ठीक है, पर इस मैली धोती को पहन-कर पैखाने जाने की भी क्या आवश्यकता है और इस टीन के कनस्टर को यहाँ क्यो लाये हैं ? (बर्तन लेने बढ़ता है।)

भगवानदास : (पीछे हटते हुए) अरे मँदा नही है, मँदा नही है।

दामोदरदास : (टीन के बर्तन को छीनकर फेंकते हुए) धूल मे गया मँजना। फादर, इस प्रकार तो मेरा इस घर मे निर्वाह नही हो सकता। आपने अब तक अपनी पुरानी आदतो को नही छोडा, माँ की भी यही दशा। उसने तो अडोस-पड़ोस मे मेरी इतनी बदनामी कर रखी है कि जिसका ठिकाना नही।

भगवानदास : (डर से कांपते हुए) भैया, मुधे तो दिस तरे तू तहे मैं रहने लदूँ और उस लछमी तो तो तुही तह।

दामोदरदास : (कुछ ठहरकर इधर-उधर घूमते हुए) जाने

दीजिए, यह तो नित्य का झगड़ा है। मैंने इस समय आपको सचमुच एक अत्यन्त आवश्यक कार्य के लिए बुलाया है।

भगवानदास : (शान्त होते हुए) तह।

दामोदरदास : आपने नही सुना, रानी कल्याणी ने रुक्मिणी का बहुत अपमान किया है।

भगवानदास : (आश्चर्य से) अपमान !

[लक्ष्मी का प्रवेश]

लक्ष्मी : रानी कलियानी का दोष लगावत है। झूठ, स्वारी आना झूठ। रानी अइसि नहिन जो कोहू क्यार अपिमानु कइ डारैं। रुकिमिनि रानी क्यार अपिमानु यही कीन होइसि।

दामोदरदास : (क्रोध से) तुम्हे यहाँ किसने बुलाया ? तुम यहाँ विना बुलाये क्यो आयी ? जाओ यहाँ से। (लक्ष्मी को न जाते देखकर) मैं आज्ञा देता हूँ, जाओ, नही तो मैं सच कहता हूँ, मैं.... मैं.....।

लक्ष्मी : यही खातिन तोहिका नौ महीना पेटे मा राखा रहै औरु पालि कै यतना वड कीन। मसलै वाली, पालु-पालु तोहि का होइ हौ कालु। वुढापा मा यहै तौ सुनै का वदा रहै।

भगवानदास : (चकपकाकर) पर, तुम तली दाओ न यहाँ से, तुमारा ताम त्या है ?

दामोदरदास : (जल्दी-जल्दी टहलते हुए) फादर, इस समय मैं

सचमुच बडे क्रोध मे हूँ। एक काम हो तो उसे करूँ। रुपया कमाना, अफसरो को प्रसन्न करना, सार्वजनिक जीवन को व्यवस्थित रखना, फिर तुम लोगो की ऐसी रहन-सहन और ऊपर से अकीर्ति। यदि कुछ कहूँ तो माँ की इस प्रकार की लाल-पीली आँखे सहूँ। मैं तुमसे सच कहता हूँ, तुम इसे मेरे सामने से तत्काल हटा दो, नही तो आज न जाने क्या हो जायगा।

भगवानदास: (गिडगिडाकर लक्ष्मी से) तली दाओ भाई, तली दाओ, त्यो मेरे बुधापे मे धूल दलवाती हो ?

[लक्ष्मी क्रोध और शोक से पति-पुत्र की ओर देख रो देती है। मनोरमा का प्रवेश।]

मनोरमा: (आश्चर्य से) यह सब क्या है, भाई साहब ?

दामोदरदास: (अत्यन्त क्रोध से) आप भी यहाँ पधार आयी। मैं आपको हर बात का एक्सप्लेनेशन दूँ, इसके लिए न तो मैं बाध्य हूँ, और न इसकी कोई आवश्यकता ही है।

मनोरमा: (लक्ष्मी से) क्या हुआ, माँ ?

लक्ष्मी. (रोते-रोते) कुछौ नाही बिटिया, तुम्हार भाई अब मोहिका मारे पर उतारू भा है।

मनोरमा: (और भी आश्चर्य से) यह क्या सुन रही हूँ, भाई साहब ?

दामोदरदास. (छड़ी को जमीन पर ठोकते और क्रोध से ओंठ चबाते हुए) कोई भी जो मेरे मार्ग मे रोडा बनकर आयगा, उसे जिस प्रकार भी हटाया जा सकेगा, मैं हटाऊँगा।

मनोरमा : (घृणा से) धन्य है आपके सिद्धान्तों को। (लक्ष्मी से) चलो, माँ, हम लोग यहाँ से चले। तुम यहाँ आयी ही काहे को ?

लक्ष्मी : चलती हौ, बिटिया, चलती हौं। यहिका यतना लिखावा-पढावा तौनु तो इत्तना क्यार निकरा औरु अब तोहूँ पढति हइ, राम जानै कैस का होय। (दामोदरदास से) जात हौं वेटवा, जात हौ, अब कबहूँ तोरे आगे न अइहौ। खूब पढ्यो बेटवा खूब, खूब रुपइया कमायो और खूब इज्जत बढायेव बेटवा। धरमु खोयो, करमु खोयो औरु बादि मा महतारी का मारै का तयार भयो। इस्सुर ऐसेन क्यार कबहूँ भला नही करत, बेटवा, मुदा मैं तो त्यार भलै चहति हौ। तुइ अपने मुँह से चहै जौनु कहु।

[लक्ष्मी और मनोरमा का प्रस्थान। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

दामोदरदास : (लम्बी साँस लेकर) फादर, यह सब क्या है ? मेरे इस धनोपार्जन, इस वैभव, इस ऐश्वर्य, इस मान-वृद्धि का मुझे घर मे यही पुरस्कार है ? अब मैं इस घर मे एक क्षण न रहूँगा। आप लोग नीचो के समान रहे, मैं सभ्यता लाने का प्रयत्न करूँ, उस पर माँ मुझे इस प्रकार गालियाँ दे। यह मनोरमा इस प्रकार धिक्कारे। ऐसे घर में रहना और ऐसे माँ-बाप, बहन का मुख देखना भी·· ····· क्या कहूँ। (बाहर जाना चाहता है।)

गवानदास : (आगे बढ़कर दामोदरदास के पैर पकड़ते हुए)

भैया, मेरी तरफ देथ, मेरी उमर ती तरफ देथ। मेरे सपेत बालो ती तरफ देथ। समद ले, तेरी माँ पादल हो दई है। दुनिया मे लोद पादल भी तो हो दाते हैं। (रोता है।)

दामोदरदास : (लम्बी साँस लेकर) अच्छी-भली को कैसे पागल समझ लूँ ? (कुछ ठहरकर हाथ की घड़ी की ओर देख जल्दी से) ओह ! इतनी देर हो गयी और काम थोडा भी न हुआ। मेरा एक आवश्यक एन्गेजमेट रहा जाता है।

भगवानदास : (कुछ शान्त होकर) हाँ, तो तुम तहो न, उस अपमान के लिए त्या तरना है ? उदयसिह अपना दबेल है। अपन उससे सब तुथ तरा सतते हैं।

दामोदरदास : छोटी सी बात है और कुछ नही। रुक्मिणी तो वडी-वडी बाते चाहती थी, पर इस समय उस छोकरे प्रकाश के कारण अजयसिह से अपना भी कुछ काम है, अत मैंने उसे इस पर राजी कर लिया है कि अजयसिंह उसके नाम एक क्षमा-पत्र भेज दे।

भगवानदास : अत्था।

दामोदरदास : उसमे यह लिखा हो कि मेरी रानी ने तुमसे अपमानपूर्वक जो बातें की हैं उसके लिए मैं हाथ जोड-कर क्षमा माँगता हूँ।

भगवानदास : अत्थी बात है।

दामोदरदास : 'हाथ जोडकर' यह वाक्य रुक्मिणी अवश्य

चाहती है। वह कहती है कि राजपूत लोग किसी को हाथ जोडने मे अपना सबसे बड़ा अपमान समझते हैं।

भगवानदास : (बेपरवाही से) अभी यह तित्थी ले आऊँदा।

दामोदरदास : और उसने न दी तो ?

भगवानदास : नही तैसे न देयदे, देना ही परेदा।

दामोदरदास : समझ लीजिए न दी तो ?

भगवानदास : फिर सोतेंदे, त्या तरना है।

दामोदरदास : सोचना क्या है ? ऐसी दशा मे कल ही आपको उस पर नालिश करनी पड़ेगी।

भगवानदास : पर वह दरूर दे देयदा।

दामोदरदास : (क्रोध से) और न दिया तो आपको नालिश करना मजूर नही है ? मैं आपके लिए काम कर-कर के मरा जाऊँ, और आप अजयसिंह पर नालिश करने को तैयार न हों, चाहे रुक्मिणी का और मेरा सदा को झगडा हो जाय और मेरा जीवन नरक बन जाय।

भगवानदास : (डरते-डरते) मैंने नालिस तरने तो नाही तहीं ती, मैं तो यह तहता हूँ ति वह तित्थी दे देदा।

दामोदरदास : (दृढ़ता से) और न दी तो कल आपको उस पर नालिश करना ही होगा; नही तो मैं घर छोडकर चल दूँगा।

भगवानदास : दैसा तुम तहोदे तरूँदा।

दामोदरदास : तो स्नान और पूजन के पहले ही जाइए। आकर नहाइएगा, जिसमे अजयसिंह कही बाहर न चला जाय।

भगवानदास : पूदा तरते दाउँ, तो दरा निसतितता रहेदी ।

दामोदरदास : (जल्दी से घुडककर) नही, नही, पहले वहाँ जाइए । पूजन क्या ? व्यर्थ की चीज है, निरर्थक वक्त जाता है । ईश्वर ऐसा मूर्ख है कि उसका पूजन करने और नाम लेने से वह प्रसन्न हो जाय ? फिर ईश्वर है ही कहाँ ? मुझे तो कभी कही नही दिखा, पर आपका विश्वास ठहरा, अत मैं कुछ नही कहता । रुक्मिणी को प्रसन्न करना ईश्वर को प्रसन्न करने से कही अधिक आवश्यक है । अगर अधिक विलम्ब भी लग जाय तो कोई हानि नही, आज की और कल की, दोनो पूजा, कल इकट्ठी कर डालिएगा ।

भगवानदास: अत्थी वात हैं, अभी दाता हूँ ।

दामोदरदास : फौरन । (जाने को उद्यत होता है, पर रुककर) और देखिए, ठीक कपडे पहनकर जाइएगा और मोटर मे । पैदल ही न चल दीजिएगा । आपकी पुरानी आदतें अभी भी नही गयी हैं । मैं भी बाहर जा रहा हूँ ।

[आगे-आगे दामोदरदास और उसके पीछे भगवानदास का प्रस्थान । परदा उठता है ।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान : राजा अजयसिंह का बैठकखाना

समय : प्रातःकाल

[कमरे के तीन ओर दीवालें हैं। तीनों में अनेक दरवाज़े और खिड़कियाँ हैं। कई दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द हैं और कई खुले। खुले हुए दरवाज़ों और खिड़कियों से प्रातःकाल के प्रकाश से प्रकाशित आकाश और पहाड़ियाँ दिख रही हैं जिससे जान पड़ता है कि कमरा दुमंजले पर है। दीवालें, छत, दरवाज़े और खिड़कियाँ बैंगनी तैल रँग से रँगे हैं, जिस पर अनेक रंग की बेलें हैं। दरवाज़ों और खिड़कियों में काँच है और बैंगनी ज़री के महराबदार परदे पड़े हैं। दीवालों पर बड़े-बड़े चित्र और आइने लगे हैं। छत से बैंगनी रंग के झाड़-फ़न्नूस झूल रहे हैं। नीचे बैंगनी रंग की ज़मीन का बेल-बूटेदार फ़ारस देश का रेशमी क़ालीन बिछा है, जिस पर बैंगनी रंग के फूलदार रेशम से मँढे हुए अनेक सोफ़े और कुर्सियाँ सजी हैं। एक ओर टेबिल पर लिखने-पढ़ने का सामान है। कुछ अलमारियों में पुस्तकें रखी हैं। एक सोफ़ा पर चित्र रखने की पुस्तक (एलबम) खोले हुए सफ़ेद ढीला कुरता और पायजामा पहने, नंगे सिर अजयसिंह

बैठा है। कल्याणी अपने मामूली वस्त्र, आभूषण पहने उसी सोफा पर बैठी हुई झुककर उस किताब की ओर देख रही है।]

अजयसिंह : बस, यदि तुम इस चित्र मे साफे के स्थान पर गाधी टोपी, अचकन के स्थान पर खादी का कुरता, चूड़ीदार पायजामे के स्थान पर खादी की धोती और अँग्रेज़ी जूते के स्थान पर गुजराती स्लीपर कर दो तो यह प्रकाशचन्द्र का चित्र बन जायगा।'आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व का यह मेरा चित्र है। मेरी अवस्था भी उस समय बीस-बाईस वर्ष की रही होगी।

कल्याणी : इतना सादृश्य है ?

अजयसिंह : कुछ पूछो मत। ऐसा ही कपाल, ऐसी ही भौहे, ऐसी ही आँखें, ऐसी ही नाक, ऐसे ही ओठ, ऐसी ही रेख, ऐसी ही ठुड्डी, ऐसा ही भरा हुआ मुख और शरीर। कैसी अद्‌भुत समानता है, मानो विधाता ने इस चित्र को सामने रखकर ही उसे रचा है। क्या कहूँ, कल्याणी।

कल्याणी : सचमुच बडे आश्चर्य की बात है, महाराज।

अजयसिंह : फिर, कल्याणी, उस पर न जाने क्यो मेरा स्नेह उमडा पडता है। तुमने उसे बुलाया था ?

कल्याणी : हाँ, महाराज, बुलाया था। वह तो घर नही मिला, उसकी माँ मिली थी और उसने उत्तर भिजवा दिया कि प्रकाशचन्द्र वहाँ नही आयगा।

अजयसिंह : (आश्चर्य से) उसकी माँ है ?

कल्याणी : हाँ, महाराज, उसकी माँ है।

अजयसिंह : (जल्दी से) जो दासी बुलाने गयी थी उसने उसकी माँ को देखा है ?

कल्याणी : हाँ, अच्छी प्रकार देखा है, पर आपके सन्देह मे थोडी-सी भी सत्यता नही है। मैंने दासी से सब कुछ पूछ लिया है। उसका नाम इन्दु नही, तारा है।

अजयसिंह : (कुछ विचारते हुए) लेकिन शायद इन्दु ने ही अपना नाम बदलकर तारा रख लिया हो ?

कल्याणी : पर, महाराज, वह तो बहुत वृद्ध है, ७० वर्ष से कम नही। इन्दु दीदी की अवस्था तो पचपन से अधिक न होगी।

अजयसिंह : (नैराश्य से लम्बी साँस लेकर) तब सन्देह की सचमुच मे कोई जगह नही रह जाती। (फिर कुछ सोचकर) पर उसकी माँ ने यह क्यो कहलवाया कि प्रकाशचन्द्र वहाँ नही आयगा ?

कल्याणी : उस दिन के भोज का वृत्तान्त क्या प्रकाशचन्द्र ने उससे न कहा होगा ?

अजयसिंह : (सिर हिलाते हुए) हाँ, हाँ, यही बात है। (कुछ सोचकर) पर फिर प्रकाश इस चित्र से इतना क्यो मिलता है ?

कल्याणी : (विचार करते हुए) कभी-कभी यह भी होता है, महाराज; जिनसे कोई सम्बन्ध नही रहता, उनके मुख तक एक-से हो जाते हैं।

अजयसिंह : (कुछ ठहरकर) और मेरा हृदय क्यो उसकी ओर खिचा जाता है ?

कल्याणी : (कुछ ठहरकर, सोचते हुए, दुःख से मुस्कराकर) अपुत्रक होना इसका कारण हो सकता है।

अजयसिंह : (लम्बी साँस ले सिर हिलाते हुए) जरूर यही बात है, कल्याणी। तो इस विचार को ही अब हृदय से निकाल देना चाहिए। (चित्रो की पुस्तक बद करके रख देता है।)

कल्याणी : और अनेक चिन्ताएँ आपको हैं ही, उस सूची को क्यो बढा रहे हैं ?

अजयसिंह : कल्याणी उसने यहाँ गड़बडी भी बहुत आरम्भ कर दी है, अपने इस्टेट मे भी बडी गडबडी मचायी है।

कल्याणी : इसे भी भूल जाइए, महाराज। मैं तो सदा आपसे एक ही निवेदन करती हूँ कि अब यह हमारा चौथापन है, चित्त को शान्त रख, ईश्वर भजन कर, जितने दिन भी ससार मे रहना है सुख से रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

अजयसिंह : (हाथ मलते हुए) यह तो असम्भव बात है, कल्याणी। सुख और मुझे ? स्वप्न मे भी सम्भव नही है।

[रमा नौकरानी का प्रवेश।]

रमा : (अभिवादन कर) महाराज, मतरी आया है और कहता है, सर भगवानदासजी श्रीमान् से कुछ आवश्यक कार्य के लिए मिलने आए हैं।

अजयसिंह : (कल्याणी से) तुम ज़रा भीतर जाओ, मैं उनसे मिल लेता हूँ।

कल्याणी : एक बात स्मरण आ गयी, वह कह दूँ, फिर उन्हे

बुलाइये। (रमा से) तुम बाहर ठहरो।

[रमा का प्रस्थान]

अजयसिंह : (घबड़ाकर) क्या कुछ भगवानदास के सम्बन्ध में है ?

कल्याणी : आप घबड़ाये क्यो जाते हैं, साधारण-सी बात है, अभी बताती हूँ।

अजयसिंह : जल्दी बता दो, वे बाहर खडे हैं।

कल्याणी : (बेपरवाही से) खडे रहने दीजिए, क्या शेर हैं जो खा जाएँगे ? बात यह है कि कुछ दिन हुए रुक्मिणी आयी थी। बात ही बात मे वह तुनककर चली गयी और यह कहती हुई गयी कि मैंने उसका अपमान किया है।

अजयसिंह : (घबड़ाकर खड़े हो) ओह ! तब तो भगवानदास इसीलिए आये होंगे।

कल्याणी : (चिढकर) आप तो, महाराज, निरर्थक ही घबडाये जाते हैं। भगवानदास कर क्या लेगे ?

अजयसिंह : कल्याणी, तुम समझती नही, अगर वे लोग चाहे तो हमे पल भर मे चौपट कर सकते हैं।

कल्याणी : आपका अभिप्राय सम्पत्ति से है न ?

अजयसिंह : और सम्पत्ति बिना हम लोग क्या हैं ?

कल्याणी : साधारण मनुष्य तो हैं।

अजयसिंह : आह ! कल्याणी, वह बिल्कुल दूसरी बात है।

कल्याणी : परन्तु, महाराज, मैं तो इस प्रकार के श्रीमान के जीवन की अपेक्षा, जो दूसरों की मुट्ठी मे रहता, दूसरों

के हाथ की लकडी पर बन्दर के समान नाचता, और और रात-दिन क्लेश पाता रहता है, एक भिखारी के जीवन को अच्छा समझती हूँ।

अजयसिंह : (घबड़ाते हुए) इस विषय पर तो किसी दूसरे दिन चर्चा करना अच्छा होगा, वे बाहर हैं। (कुछ रुककर) हाँ, यह तो तुमने बतलाया ही नही कि रुक्मिणी से झगडा किस बात पर हुआ ?

कल्याणी : (रूखी हँसी हँसकर) झगडा हुआ हो तब न, विलायत और भारतवर्ष की बात हो रही थी। उसी ने मेरा अपमान किया और उल्टा यह कह गयी कि मैंने उसका अपमान किया है।

अजयसिंह : (जल्दी से) अच्छा, तो उनसे मिल लूँ। (जोर से) रमा!

कल्याणी : (लम्बी साँस लेकर) महाराज, वृद्ध हो जाने और अपुत्रक होने पर भी सम्पत्ति से इतना मोह क्यो ? मोह ही अनेक दु खो की जड है। अभी आपको अपने हृदय में बहुत सुधार करना है।

[रमा का प्रवेश। कल्याणी का प्रस्थान।]

अजयसिंह : सर भगवानदासजी को अच्छी तरह से भिजवा दो।

रमा : जो आज्ञा।

[रमा का प्रस्थान। अजयसिंह बेचैनी से टहलता है। सर भगवानदास का अपनी साधारण वेश-भूषा में प्रवेश।]

अजयसिंह , (आगे बढ़ भगवानदास से हाथ मिलाते हुए) आइए, लाला साहब, आइए; कहिए आनन्द से हैं ? बहुत दिनो के बाद कृपा की । क्षमा कीजिए, आपको कुछ देर ठहरना पडा । मैं पाखाने मे था ।

भगवानदास : कोई हरद नही, कोई हरद नही, रादा साहब, यह तो मेरा घर है । तहिए आप तो अत्थे हैं ?

[दोनों सोफा पर बैठ जाते हैं ।]

अजयसिंह : कृपा है आपकी । कहिए क्या आज्ञा है ?

भगवानदास : तुथ नही रादा साहब, एक थोरा-सा सवाल थरा हो दया है ।

अजयसिंह : (घबड़ाते हुए) कहिए, कहिए, कैसा सवाल ?

भगवानदास : आप दानते हैं, तभी-तभी औरतो मे यो ही तुछ वाततीत हो दाती है ।

अजयसिंह : (और भी घबड़ाकर) क्यो, क्या हुआ, लाला साहब ?

भगवानदास : आप नही दानते, रानी साहवा से मेरी बहू ता यो ही तुथ अपमान हो दया है ।

अजयसिंह : (अत्यन्त घबड़ाकर) हाँ, हाँ, रानी मुझसे कहती तो थी, पर अपमान की त··त··त··तो कोई बात न···न··नही कही । य··य··यही कहा था कुछ बात-चीत हुई थी ।

भगवानदास : (मुस्कराते हुए) घवडाने ती तोई बात नही है, रादा साहब, यह तो घर ती वात है ।

अजयसिंह : (लज्जित हो कुछ शान्त होकर) नही, नही, घबडाने की क्या बात है, अगर दो बडे घरो मे झगडा हो भी जाय तो कोई नगे-लुच्चो का घर थोडे ही है, निपट ही जाता है।

भगवानदास : विल्तुल थीत फर्माते हैं, रादा साहब, इसीलिए तो मैं हादिर हुआ हूँ।

अजयसिंह : (और भी शान्त होकर) आज्ञा दीजिए।

भगवानदास : आप दानते हैं, हम पुराने लोदो तो, तो मान-अपमान सब बराबर है; पर आदतल ते लरते दरा दूसरी तरह ते हैं। दामोदर ती वहू ताहती है ति आप उसते नाम एक तित्थी लिथ देवे।

अजयसिंह : (फिर घबड़ाकर) कैसी चिट्ठी, लाला साहब ?

भगवानदास : (बेपरवाही से) मामूली सी, ति रानी साहबा से दो तुम्हारा अपमान हो दया। उसते लिए मैं माफी माँदता हूँ।

अजयसिंह : (और भी घबड़ाकर) झगड़ा किसी से हुआ, लाला साहब, और माफ़ी कोई माँगे ?

भगवानदास : (गम्भीरता से) यह तो एत मामूली-सी बात है, रादा साहब, और आप दानते हैं ति दामोदर ता सुभाव तैसा है ?

अजयसिंह : (अत्यन्त घबड़ाकर) आप कल तक का वक्त मुझे दीजिए।

भगवानदास : (और भी गम्भीर होकर) तब तो बात और बिदर दायदी, रादा साहब।

अजयसिंह : (बहुत अधिक घबड़ाकर खड़े होते हुए) कैसी, लाला साहब ?

भगवानदास : (धीरे से) आप दानते हैं, तरार पर आप ते यहाँ से रुपया नही तुताया दया। ब्याद तत नही आया। दामोदर तो तल ही नालिस तरने तो उतारू है, रादा साहब। मैं वरी मुसतिल से सगदा तर आया हूँ।

अजयसिंह : (बहुत अधिक घबड़ाहट के मारे टहलते हुए) ओह ! इतनी-सी बात पर।

भगवानदास : आदतल ते लरतो ता त्या हाल पूथते हैं, रादा साहब।

अजयसिंह : (फिर बैठकर धीरे से) अच्छा, यदि मैं यह चिट्ठी लिख दूँ तो कल्याणी तो नहीं जानेगी ?

भगवानदास : (मुसकराते हुए) त्या तहते हैं, रादा साहब, ऐसा तहीं हो सतता है।

अजयसिंह : (लम्बी साँस लेकर) अच्छी बात है, लिखे देता हूँ रादा साहब।

[टेबिल पर जा, पत्र लिखता है और लाकर भगवानदास को देकर बैठता है।]

भगवानदास : (चश्मा लगाकर पत्र पढ़) इसमे एत बात और दोर दीजिए, रादा साहब।

अजयसिंह. (घबड़ाकर) क्या, लाला साहब ?

भगवानदास : हात दोर तर।

अजयसिंह : (कुछ उत्तेजित होकर) यह तो अब बहुत ज्यादा है, लाला साहब।

भगवानदास : (गम्भीर होकर सिर हिलाते हुए) तब तो यह तित्थी ताम ती नही है और नतीदा तो आप दानते ही हैं।

अजयसिंह : (दो बार टहलकर, लम्बी साँस ले) और आप कल तक का वक्त भी न देंगे ?

भगवानदास : वह तो बिल्तुल ही नहीं हो सतता ।

अजयसिंह : अच्छा लाइए, जोड देता हूँ। (पत्र लेकर फिर टेबिल पर जाता है और लिखकर उसे भगवानदास को दे लम्बी साँस लेकर बैठता है।)

भगवानदास : (पढ़कर जेब में रखते हुए) बस धदरा मिता, रादा साहब ।

अजयसिंह : (गिडगिडाकर) परन्तु, गनी न जान पाय, यह ध्यान रखिएगा।

भगवानदास : हरदिद नही, हरदिद नही, रादा साहब । (कुछ ठहरकर) अत्था तो अब इदादत हो, मैंने नहाया तत नही ।

[दोनो उठते हैं। भगवानदास अजयसिंह से हाथ मिलाकर जाता है। अजयसिंह एक दीर्घ निश्वास छोडता है। परदा गिरता है।]

छठवाँ दृश्य

स्थान : दामोदरदास गुप्ता के कमरे की दालान

समय : सध्या

[दामोदरदास और थेरिजा का प्रवेश। दामोदरदास अंगरेज़ी लम्बा कोट (फ्रॉक-कोट) और धारीदार पतलून पहने है। थेरिजा अपनी साधारण वेश-भूषा में है।]

थेरिजा : मुझे शक है, मिस्टर गुप्ता, कि आज मिसेज गुप्ता ने हम लोगो को देख लिया।

दामोदरदास : (बेपरवाही से) नही, नही, थेरिजा, तुम्हारा सन्देह ठीक नही है। उन्हे ड्रेसिंग-रूम मे घटो लगते हैं।

[चपरासी का प्रवेश। वह सलाम करता है।]

चपरासी : हुज़ूर ! धनपालजी, पडित विश्वनाथजी और मौलाना शहीदबख्श साहब आये हैं।

दामोदरदास : भीतर ले आओ।

[चपरासी का प्रस्थान।]

थेरिजा : ये लोग इस वक्त क्या कुछ काम से आये हैं ?

दामोदरदास : हाँ, देखती नही, मैं भी आज फ्रॉक-कोट पहने हूँ। टाउनहाल में अभी छ बजे एक आम सभा है।

थेरिजा : किस लिए ?

दामोदरदास : इरीगेशन-स्कीम के समर्थन के लिए।

थेरिजा : तब तो मैं भी चलूँगी।

[धनपाल आदि का अपनी साधारण वेश-भूषा में प्रवेश। सब दामोदरदास और थेरिजा से हाथ मिलाते हैं।]

दामोदरदास : अच्छा, वर्माजी नही आये ?

विश्वनाथ : मैं स्वय उनके यहाँ गया था, बहुत प्रयत्न किया, परन्तु उन्होने कहा, आज बहुत अधिक काम है।

शहीदबख्श : अरे, यह सब बहानेबाजी है। वह प्रकाश से बहुत डर गया है।

धनपाल : डरेगा नही ? उसके पत्र का यह अक चौथाई भी नही बिका। जोरो से उसके बॉयकाट का आन्दोलन हो रहा है।

विश्वनाथ : अच्छा सुनिए साहब, अब टाउनहाल का वृत्तान्त। वहाँ बडा गडबड हुआ है।

दामोदरदास : (जल्दी से) क्यो, क्या हुआ ?

विश्वनाथ : प्रकाशचन्द्र की पार्टी वहाँ पहुँच गयी और टाउन-हाल के भीतर बैठ भी गयी, उन्ही मे आपकी बहन भी है ?

दामोदरदास : (आश्चर्य से) मनोरमा भी है ! ओह ! सबसे बडा अनर्थ तो यही है। अच्छा, और अपने आदमी नही पहुँचे ?

विश्वनाथ : मिस्टर गुप्ता, प्रकाशचन्द्र की पार्टी बारह बजे से ही वहाँ पर थी। आप सोच सकते हैं, छ वजे सध्या की

सभा के लिए कोई भी भला आदमी बारह बजे दिन को जायगा ? मैंने अपने सारे आदमियो को दो घटे पहले जाने को कहा था ।

दामोदरदास : हाल तो म्यूनिस्पैल्टी के चार्ज मे है, इतनी जल्दी वहाँ के सन्तरी ने हाल के दरवाजे क्यो खोले ?

विश्वनाथ : मैं सारा वृत्तान्त आपको बतलाता हूँ । सन्तरी का कोई दोष नही । हम लोगों के निर्णय के अनुसार उसने चार बजे ही दरवाज़े खोले थे, पर, वे तो सब दरवाजों पर बैठ गये थे । चार बजे दरवाज़े खुलते ही फुर-से सबके सब भीतर घुस पडे ।

दामोदरदास : और सन्तरी ने उन्हे रोका नही ?

विश्वनाथ : कैसी बाते करते हैं, मिस्टर गुप्ता, एक आदमी सैकड़ो आदमियो को क्यो कर रोकता ? फिर सार्वजनिक विज्ञापन था, किसी को कैसे रोका जा सकता था ? जो पहले आया वही बैठ गया ।

दामोदरदास : तो वहाँ अपने कोई आदमी नही हैं ?

विश्वनाथ : हैं क्यो नही, अपने भी आदमी हैं ।

दामोदरदास : पर अधिक सख्या उनकी है, क्यो ?

विश्वनाथ : यह कहना कठिन है ।

दामोदरदास : (पैर पटकर) अनर्थ का कुछ ठिकाना है ।

शहीदबख्श : ओफ !

थेरिजा : बेशक ।

धनपाल : सचमुच ।

दामोदरदास : (चिढकर) पर बात तो यह है कि वे लोग डंडा लेकर हर काम के पीछे पडते हैं और हम लोग सारा काम आराम के साथ करते हैं ।

चपरासी : (प्रवेश कर) कार हाजिर है, हुजूर ।

दामोदरदास : कौनसी ? रोल्सरायस है न ?

चपरासी : जी हाँ, सरकार । (चपरासी जाता है ।)

दामोदरदास : (कुछ सोचते हुए) ऐसी स्थिति मे यदि सभा आगे बढा दी जावे तो ?

विश्वनाथ : (जल्दी से) मैं तो इस प्रस्ताव मे सर्वथा सहमत हूँ ।

धनपाल : इससे तो उस इरीगेशन-स्कीम का रहा-सहा सम्मान भी धूल मे मिल जायगा । लोग कहेगे, अवश्य ही दाल मे कुछ काला है । आप चिन्ता क्यो करते हैं ? सभापति तो आप मुझको बनायगे न ?

दामोदरदास : जरूर ।

धनपाल : बस, मैं तीन वक्ताओ को बोलने की इजाजत दूँगा । आप प्रस्ताव रखेगे, पंडितजी अनुमोदन और मौलाना साहब समर्थन करेंगे । आप जानते ही हैं, पंडितजी और मौलाना साहब कैसे वक्ता हैं ।

दामोदरदास : आप लोगो के सुवक्ता होने मे किसे शक है ?

धनपाल : जनता पर तो प्रभाव पडने की बात होती है । जहाँ आप लोगो का प्रभाव पडा और उस ओर से कोई न बोलने पाया कि प्रस्ताव पास हो जायगा ।

विश्वनाथ : अजी साहब, ये घरो मे ही निर्णय करके आये

होंगे। ऐसे लोगों पर भाषणों का कोई प्रभाव नही पडता। आप निराशा में आशा को देख रहे हैं।

शहीदबख्श : अगर ऐसी हालत हुई तो उसका भी मैंने कुछ इन्तज़ाम कर लिया है। मीटिंग आगे बढाना तो सचमुच अपने हाथ से अपनी नाक काटना है।

धनपाल : और फिर आगे की सभा मे वे लोग न पहुँच जायँगे यह कौन कह सकता है? इनका तो आन्दोलन दिनो-दिन बढ रहा है। (जल्दी से) चलिए, चलिए। सार्वजनिक जीवन में संघर्ष यों ही चला करता है। (घड़ी देखकर) हम लोगो को काफी देर हो गयी है।

शहीदबख्श : ज्यादा तो नहीं, सिर्फ इतनी ही, जिससे डिस्टिंक्शन मिल सके।

दामोदरदास : (मुसकराते हुए) हाँ, सार्वजनिक सभाओं मे इतनी देर से तो जाना ही चाहिए।

[सबका प्रस्थान। परदा उठता है।]

सातवाँ दृश्य

स्थान · टाउनहाल

समय सध्या

[सफ़ेद कलई से पुता हुआ एक बड़ा हाल है। तीन ओर दीवालें हैं, जिनमें अनेक दरवाजे हैं। दरवाजे खुले हैं, जिनसे बाहर के उद्यान का कुछ भाग दिखायी देता है, जो सध्या के प्रकाश से प्रकाशित है। पीछे की दीवाल पर बादशाह जॉर्ज और रानी मेरी तथा कई अँगरेजो और हिन्दुस्तानियो की तस्वीरें लगी हैं। बादशाह और बेगम की तस्वीरो के ऊपर यूनियन जैक टँगा है। इसके नीचे एक घड़ी लगी है, जिसमें सवा-छै बजे हैं। छत से बिजली के पखे और बत्तियाँ झूल रहे हैं। पखे चल रहे हैं, बत्तियाँ जल रही है। सामने एक तख़्त है जिस पर दरी बिछी है। तख़्त के बीच में एक टेबिल कपड़े से ढँकी है और उस पर लिखने-पढने का सामान और एक घण्टी रखी है। टेबिल की तीन ओर बेंत से बुनी, हाथदार, पाँच कुर्सियाँ रखी हैं। तख़्त के नीचे हॉल की ज़मीन पर भी कुर्सियाँ हैं। इन कुर्सियों पर तरह-तरह के कपड़े पहने हिन्दू और मुसलमान बैठे हैं। खादी के कपड़े वाले अधिक दिखते हैं।

इन्हीं में प्रकाशचन्द्र है। तख़्त के नीचे की बाँयीं ओर की कुर्सियों पर स्त्रियाँ बैठी हैं; इन्हीं में मनोरमा और सुशीला भी है। दाहिनी ओर की कुर्सियो पर दो अँगरेज और एक मेम बैठी है। कुछ कुर्सियाँ खाली हैं, कुछ लोग अभी भी आते जा रहे हैं। धनपाल, दामोदरदास, विश्वनाथ, शहीदबख़्श और थेरिजा का प्रवेश। तख़्त के ऊपर की बीच की कुर्सी को छोड़कर शेष चार पर ये लोग बैठ जाते हैं। थेरिजा दाहिनी ओर की, तख़्त के नीचे की, कुर्सी पर अँगरेजों के साथ बैठ जाती है।)

दामोदरदास : (खड़े होकर) बहनो और भाइयो ! आप सब लोग इस बात को जानते हैं कि ह्यूमेनटेरियन लीग ने आज की यह सभा किस कार्य के लिए बुलायी है। मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आज की इस सभा के सभापति हमारे प्रान्त की जनता के प्रिय मिनिस्टर माननीय मिस्टर धनपाल बनाये जायँ। (बैठ जाता है। कुछ तालियाँ बजती हैं।)

एक अँगरेज : (खड़े होकर) आइ सेकिंड दिस प्रपोज़ल। (बैठ जाता है। कुछ तालियाँ।)

धनपाल : (बीच की कुर्सी पर बैठ और फिर खड़े होकर) बहनो और भाइयो आज जनता के हित के जिस पवित्र कार्य के लिए आप लोगो को कष्ट दिया गया है, वह आप लोग विज्ञापन द्वारा जान ही गये हैं। आज की सभा जिस संस्था की ओर से बुलायी गयी है, वह संस्था आपकी चिर-परिचित है। उस संस्था का जैसा ह्यूमेन-

टेरियन लीग नाम है, वैसा ही उसका ह्यूमेनिटी अर्थात् जनता के हित का कार्य भी है। फिर यह सस्था आपके नगरमात्र की न होकर आपके प्रान्त की है। इस प्रान्त मे, यह सस्था बहुत प्राचीन और प्रतिष्ठित है। आज की सभा, इस सस्था ने इस प्रान्त की निर्धन और दीन जनता के हित के लिए एक विशाल नहर की योजना के लिए जो कि श्री गुप्ताजी ने सरकार के विचार के लिए उपस्थित की है, समर्थन के लिए बुलायी है। मुझे तो आश्चर्य होता, यदि ह्यूमेनटेरियन लीग कहलाने वाली यह सस्था इस देश, प्रान्त और विशेपकर इस जिले की ह्यूमेनिटी, जनता के लाभ की, ऐसी पवित्र योजना के लिए इस प्रकार की सभा न बुलाती। (कुछ तालियाँ) चूँकि इस योजना का पूरा हाल श्रीयुत गुप्ताजी ही आपको समझा सकेंगे, अत मैं उन्ही से प्रार्थना करता हूँ कि वे आपके सामने इस सम्बन्ध मे प्रस्ताव उपस्थित करें। (बैठ जाता है। कुछ अधिक तालियाँ।)

दामोदरदास : (खड़े होकर) सभापति महोदय, बहनो और भाइयो! जो प्रस्ताव मुझे आपकी सेवा मे उपस्थित करने की आज्ञा दी गयी है वह इस प्रकार है—(जेब से एक काग़ज़ निकालकर पढता है।) यह सार्वजनिक सभा दामोदरदास गुप्ता द्वारा सरकार के सम्मुख विचार के लिए उपस्थित की गयी नहर की योजना (इरीगेशन-स्कीम) को जनता के लिए अत्यन्त लाभदायक समझती है, और

उसका हृदय से समर्थन करती है। (कागज को टेबिल पर रख, पेपर-वेट से दबाते हुए) बन्धुओ ! मेरी ही योजना और मैं ही प्रस्ताव उपस्थित करूँ, यह सचमुच विचित्र-सी बात है, (कुछ हँसी) परन्तु यदि मेरी आत्मा कहती है कि यथार्थ में इससे जनता का भारी लाभ होने वाला है तो मैं ऐसा करने में कोई हानि नही देखता। सज्जनो ! जैसा आपसे सभापति महोदय ने कहा है, आज इस सस्था ने जिस कार्य के लिए सभा बुलायी है, वह यथार्थ मे जनता का एक अत्यन्त हितैपी कार्य है।(कुछ तालियाँ) आप जानते हैं कि भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के निवासियों मे एक प्रकार से सौ मे से अस्सी और दूसरे प्रकार से सौ मे से नव्वे मनुष्य कृपि पर अपना निर्वाह करते हैं। कृपि, कभी भी, विना यथेष्ट पानी की सिंचाई के साधनो के जैसी चाहिए वैसी सफल नही हो सकती। अन्य देशों मे एकड के पीछे जो उपज होती है उससे भारतवर्ष की एकड पीछे उपज वहुत कम है। यद्यपि उसके कई कारण हैं, परन्तु प्रधान कारण यहाँ सिचाई की सुविधा न होना है। जहाँ-जहाँ यह सुविधा है, या होती जाती है, वहाँ-वहाँ खेती की उपज बहुत अधिक है और बढती जाती है। सज्जनो ! मैं तो उस समय का स्वप्न देख रहा हूँ, जब इस योजना की नहर से मीलो दूर-दूर तक सिंचाई होगी, फुट-फुट और डेढ-डेढ फ़ुट के गेहूँ के पौधे बढ-बढकर छाती तक ऊँचे हो जायँगे। दो-दो

और तीन-तीन इच लम्बी वाले छः-छ इच लम्बी होने लगेंगी। (कुछ तालियाँ) इतना ही नही, गन्ने के जगल यहाँ दिखने लगेंगे और अनेक प्रकार की बहुमूल्य फसलें भी हम लोग उत्पन्न कर सकेंगे।

कुछ व्यक्ति : हिअर-हिअर ! हिअर-हिअर ! (कुछ तालियाँ।)

दामोदरदास : इस योजना के कारण, बन्धुओ ! विचारे निर्धन किसान और मजदूर, भूख से त्राहि-त्राहि और पाहि-पाहि करने वाले किसान और मज़दूर, विना यथेष्ट वस्त्रो के जाडो मे काँपने वाले किसान और मजदूर, विना अच्छे घरो के टूटे-फूटे और वरसात मे सैकडो जगह से चूनेवाले घरो मे रहने वाले किसान और मजदूर, मालामाल हो जायँगे। (कुछ तालियाँ) भाइयो ! सारे दु खो की जड़ निर्धनता है और इस देश की निर्धनता दूर करने का सबसे बडा उपाय इस देश की कृषि की उन्नति करना है। मेरी योजना इसी के लिए है। (कुछ तालियाँ) फिर सज्जनो यह योजना सर्वथा नवीन भी नही है। इसका समर्थन जमीदारो और किसानो के हित के लिए ज़मीदर एसोसिएशन ने, ग्राम निवासी जनता के हित के लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने, ग्राम-निवासी स्त्रियो के हित के लिए लेडीज एसोसिएशन ने और सभी जनता के हितार्थ ह्यूमेनटेरियन लीग ने किया है। कानून की दृष्टि से भी इसमे सबो के हको की रक्षा है, यह इससे प्रकट कि बार-एसोसिएशन ने भी इसका समर्थन किया है और इसके कारण उपज

बढ़ने पर व्यापार को लाभ पहुँचेगा, यह इससे सिद्ध है कि चेम्बर आफ़ कॉमर्स ने भी इसके पक्ष में अपना मत दिया है। (कुछ तालियाँ) बन्धुओ ! मुझे मालूम है कि स्वार्थियो ने अपने स्वार्थ-वश इस योजना के विरुद्ध तरह-तरह की वाते फैलाना आरम्भ किया है।

कुछ व्यक्ति : शेम ! शेम !

दामोदरदास : परन्तु, यह कोई नयी बात नही है। ससार मे आरम्भ मे हर नयी बात का, चाहे वह कितनी ही अच्छी और कल्याणकारी क्यो न हो, इसी प्रकार का विरोध हुआ है। मुझे विश्वास है कि आप मेरे प्रस्ताव को एक मत से पास करेंगे। (कुछ अधिक तालियाँ। बैठता है।)

धनपाल : (खड़े होकर) इस प्रस्ताव का अनुमोदन हमारे वयो-वृद्ध नेता आपकी म्यूनिस्पैल्टी के प्रेसीडेण्ट, हिन्दू-हितैषी श्रीमान पडित विश्वनाथजी करेंगे। (बैठ जाता है।)

विश्वनाथ : (खड़े होकर) सभापति महाशय और बन्धुओ ! इस प्रस्ताव का मैं हृदय से अनुमोदन करता हूँ। (कुछ तालियाँ) विश्वास रखिए कि यदि इस योजना से जनता के सच्चे लाभ का, ग्रामीण बन्धुओ के—गरीब ग्रामीण बन्धुओ के सच्चे लाभ का, मुझे विश्वास न होता तो मैं कभी आपके सामने खडे हो इस प्रस्ताव का अनुमोदन न करता। (कुछ तालियाँ) बन्धुओ ! इस सभा मे बहुत कम, वरन् मैं यहाँ तक कह दूँ तो अत्युक्ति न होगी, कि एक भी ऐसा व्यक्ति नही है, जिसे ग्राम-निवासियो का

उतना अनुभव हो जितना मुझे है। मैंने जाड़े की कँपकँपानेवाली ठंड, वर्षा की मूसलाधार वृष्टि और गरमी की झुलसानेवाली घूप एव लू मे घूम-घूमकर ग्राम-निवासियो को देखा है, उनकी सेवा की है। एक बार नही, भाइयो ! अनेक वार। (कुछ तालियाँ) प्लेग और हैजे-सदृश महामारियो मे मैंने भटक-भटककर उनको दवाएँ बाँटी हैं। (कुछ तालियाँ) मैं जानता हूँ कि जिस रत्नगर्भा वसुन्धरा पर जन्म लेने के लिए कभी देवता भी तरसते थे, उसी भारत भू पर निवास करने वाले यहाँ के अस्सी प्रतिशत अथवा नव्वे प्रतिशत लोगो की क्या दशा है। उनके पास न पूरा भोजन है और न वस्त्र, फिर दूसरे सासारिक सुखो की तो वात करना ही विडम्बना है। इन लोगो की इस स्थिति के लिए हम सरकार को नित्य गालियाँ दिया करते हैं। मैं भी मानता हूँ कि सरकार को इसमे बडा भारी दोष है, परन्तु वन्धुओ ! इनके उपकार के लिए, सरकार को गालियाँ देने के अतिरिक्त, हमने भी कौनसा विधायक कार्य किया है ?

कुछ लोग : हिअर-हिअर ! हिअर-हिअर !

विश्वनाथ : मैं श्रीमान गुप्ताजी को सरकार के सम्मुख ऐसी सुन्दर योजना उपस्थित करने के लिए वधाई देता हूँ। (कुछ तालियाँ) मुझे विश्वास है कि उन हिन्दुओ को, जो ग्रामो मे वहुत अधिक सख्या मे रहते हैं, इस योजना से भारी लाभ होगा। (कुछ तालियाँ) अत मैं इस प्रस्ताव

का हृदय से अनुमोदन करता हूँ (बैठता है। कुछ तालियाँ।)

धनपाल : (खड़े होकर) अब इस प्रस्ताव का समर्थन हमारे यहाँ के मुस्लिम-नेता मौलाना शहीदबख्श साहब करेंगे। (बैठता है।)

शहीदबख्श: (खड़े होकर) जनावे सदर ! हजरात ! ऐसी-ऐसी जोशीली तकरीरो के बाद मेरे मुआफिक लट्ठ आदमी की तकरीर आपको क्योकर पसद आ सकती है ? (कुछ हँसी) हजरात ! मैं पण्डितजी के इस कहने से मुत्तफिक नही हूँ कि देहात में हिन्दू ही ज्यादातर रहते हैं। मैं पण्डितजी के मुआफिक बुजुर्ग नही हूँ, इसलिए मुझे उतना तजुर्वा भी नही है, फिर भी मुझे जितना तजुर्वा है, उसकी बिना पर मैं आपसे कह सकता हूँ कि मुसलमान भी देहात में ही ज्यादा रहते हैं। यह दूसरी बात है कि हिन्दू इस मुल्क मे ज्यादा और मुसलमान कम हैं। बिरादरान ! हिन्दू फिर भी दौलतमद हैं, पर मुसलमानो के पास उतनी भी दौलत नही, वे तो बहुत ही गरीब हैं। मुझे मालूम है कि देहातो मे वे किस तरह कुत्ते और बिल्लियो की मौत मरते हैं। मैं तो कहूँगा कि ऐसे मौके पर, जब एक हिन्दू दौलतमद ने सरकार के सामने एक ऐसा स्कीम पेश किया है, जिससे मुसलमानो की भी उतनी बेहतरी होगी जितनी हिन्दुओ की, तब किसी भी मुसलमान का उसके खिलाफ अपनी राय

देना, खुद अपने पैर पर कुल्हाडी मारना है, खुदकशी करना है, और देहात मे रहनेवाले अपने भाइयो का गला घोटना है ।

कुछ व्यक्ति : हिअर-हिअर ! हिअर !

शहीदबख्श : अब रही यह बात कि कुछ लोग इस स्कीम के खिलाफ हैं, इसके लिए मैं पूछना चाहता हूँ कि दुनिया मे आज तक कोई ऐसी बात हुई है जिसके कुछ लोग खिलाफ न रहे हो ?

कुछ व्यक्ति : नही-नही, नही-नही ।

शहीदबख्श : हजरत मुहम्मद साहब तक के—

कुछ मुसलमान : वसलल्लाहो तआला वालय वसल्लम् ।

शहीदबख्श : (जोर से) हज़रत मुहम्मद साहब तक के कुछ लोग खिलाफ थे। हरेक जमात और हरेक फिरके मे कुछ लोग ऐसे होते ही हैं जो खुद अपनी नाक काटकर दूसरो का नुकसान करते हैं ।

कुछ व्यक्ति : शेम-शेम ! शेम-शेम !

शहीदबख्श : बिरादरान ! मैं इस तजवीज की तहेदिल से ताईद करता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि हरएक मुसलमान इसके हक मे अपनी राय देगा ।

धनपाल : (प्रस्ताव का कागज हाथ में लेकर) भाइयो ! प्रस्ताव आपके सामने उपस्थित कर दिया गया, उसका अनुमोदन और समर्थन भी हो गया, अब मैं इस पर आप के मत लेना चाहता हूँ । जो लोग इस प्रस्ताव के पक्ष ...।

प्रकाशचन्द्र : (खड़े होकर) सभापति महाशय, बहनो और भाइयो !

धनपाल : (जल्दी से) क्या आप भाषण दे रहे हैं ?

प्रकाशचन्द्र : जी हाँ ।

धनपाल : आप बिना सभापति की आज्ञा के नही बोल सकते ।

कुछ लोग : बिल्कुल नही, बिल्कुल नही ।

प्रकाशचन्द्र : बहुत अच्छी बात है, तो मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ । मुझे इस प्रस्ताव का विरोध करना है ।

धनपाल : आप अपना मत इसके विरोध में दे सकते हैं । मैं अब इस पर और किसी को बोलने की इजाजत न दूँगा ।

प्रकाशचन्द्र : हम सबो ने बहुत शान्ति से प्रस्ताव के पक्ष के भाषण सुने; अब इनके विरोध के भाषण न होने देना सरासर अन्याय है ।

जोर की आवाजें : अवश्य अन्याय है, अवश्य अन्याय है ।

धनपाल : (जोर से) मैं आपसे कहता हूँ, बैठ जाइए; मैं बोलने की आज्ञा नही दूँगा ।

प्रकाशचन्द्र : मैं सभापति की ऐसी अन्यायपूर्ण आज्ञा मानने को तैयार नही हूँ । मैं कदापि नही बैठूँगा ।

जोर की आवाजें : बोलिए आप, अवश्य बोलिए ।

और जोर की आवाजें : बिल्कुल मत बैठिए, बिल्कुल मत बैठिए ।

धनपाल : (और जोर से) यह कभी नही हो सकता ।

एक युवक : (खड़े होकर, यह वही युवक है जिसने कन्हैयालाल के विरुद्ध प्रस्ताव रखा था ।) मैं प्रस्ताव करता हूँ कि

इस सभापति पर इस सभा का विश्वास नही है, अत दूसरा सभापति चुना जाय। मैं अपने सभापति पर अविश्वास के प्रस्ताव के विरोध मे जिसे बोलना हो, बोलने की इजाजत देता हूँ।

[बडा हल्ला होता है। कुछ मुसलमान युवक प्रकाशचन्द्र के दल के लोगो को घूँसा मारते हैं। मारपीट बढती है। लोग भागते हैं। प्रकाशचन्द्र जैसा का तैसा खड़ा रहता है, उस पर के आक्रमण, उसके रोकने पर भी मनोरमा झेलने का प्रयत्न करती है, पर प्रकाशचन्द्र उसकी इस कोशिश मे पूरी-पूरी बाधा डालता है।]

यवनिका

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान : घुड़दौड़ का मैदान

समय : संध्या

[दूर घोड़े दौड़ने का एक मार्ग दिखायी देता है, जो सामने की ओर सफेद रंग के, लकड़ी के, कटघरे (रेलिंग) से घिरा हुआ है। इस मार्ग के एक ओर घोड़े कूदने की, घास की बनी हुई, टट्टियाँ भी दिखायी देती हैं। बायीं ओर दूर, घुड़दौड़ देखनेवाले जिस मकान में बैठते हैं, उसका एक कोना दिखायी देता है। बीच में घोड़ों पर दाव लेनेवाले जुवारियो की दुकानें बनी हैं। इसके सामने ऊँचे-ऊँचे काले तख्ते (बोर्ड) लगे हैं, उन पर खड़िया-मिट्टी (चॉक) से कुछ लिखा है। इन तख्तो के पास दाव लेनेवालों के खड़े होने के लिए ऊँचे मोढ़े (स्टूल) रखे हैं, जो खाली हैं। दाहिनी ओर एक बड़ा-सा, लम्बा डेरा (रिफ्रेशमेंट-टेंट) लगा है, जिसमें एक लम्बी टेबिल पर मदिरा, खाने-पीने का सामान आदि सजा है। बाहर कई छोटी-छोटी टेबिलें तथा कुर्सियाँ इधर-उधर पड़ी हैं। मैदान संध्या के प्रकाश और डेरा बिजली की बत्तियो से आलोकित है। घुड़-दौड़ समाप्त हो चुकी है। कुछ लोग इधर-उधर घूम रहे हैं और कुछ कुर्सियों पर बैठे खा-पी रहे हैं। डेरे में कुछ खानसामे

सामान बंद कर रहे हैं और कुछ लोगो को खाने-पीने का सामान दे रहे हैं। एक ओर से अपने साधारण कपड़े पहने और सिर पर टोप लगाये धनपाल का और दूसरी ओर से दामोदरदास का प्रवेश।]

धनपाल : हलो मिस्टर गुप्ता, आज मिसेज गुप्ता तो दिखी ही नही, उन्हे तो घुडदौड का बडा शौक है।

दामोदरदास · (उदास भाव से) गये इतवार से ही उनकी तबियत ठीक नही है।

धनपाल · (एक कुर्सी को खींचकर बैठते हुए) तुम भी बहुत उदास दिखते हो, कुछ अधिक हार गये क्या ?

दामोदरदास : (दूसरी कुर्सी पर बैठते-बैठते) पूरे बारह हजार मिस्टर धनपाल, और फिर घोडा भी हार गया।

धनपाल : (बेपरवाही से) उँह, यह तो तुम्हारे लिए कुछ भी नही है और अभी तो कल घुडदौड और है, कल पन्द्रह हजार जीत लोगे। अभी तुम्हारे तीन और घोडे भी हैं।

दामोदरदास : (कुछ बेपरवाही से) हाँ, हार-जीत की बात तो नही है, पर, भाई, (गम्भीर होकर) इधर कुछ दिन ही उल्टे आ गये हैं। सभी उल्टा होता है। कुछ करने को जाओ और कुछ होता है।

धनपाल : (गम्भीरता से सिर हिलाते हुए) यह तो ठीक है, मिस्टर गुप्ता, उस इतवार की मीटिंग का ही फल देखो। हमारा प्रस्ताव न पास हो सका, इतना ही नही, तुम्हे सूचना मिली होगी कि प्रकाशचन्द्र भी छूट गया।

दामोदरदास : (आश्चर्य से) अच्छा, कब ?

धनपाल : अभी तीन बजे, जब मैं यहाँ आ रहा था, तब कचहरी से उसका जुलूस जा रहा था। जुलूस मे, भाई, अपार भीड थी। सारा नगर का नगर उलट पडा था। स्त्रियाँ भी बहुत थी, मनोरमा भी थी।

दामोदरदास : आह ! इस मनोरमा ने तो मेरे वंश को चौपट कर दिया। तुम जानते हो उस दिन प्रकाश के बचाव मे उस पर भी मार पडी थी।

धनपाल : हाँ, सुना था।

दामोदरदास : सार्वजनिक सभा मे मेरी बहन का पिटना, अपमान की सीमा हो गयी।

धनपाल : फिर जनता में उसके और प्रकाश के सम्बन्ध मे अनेक बाते फैल रही हैं।

दामोदरदास : क्या कहूँ, मैं क्या जानता था कि यह लडकी इतना अनर्थ करेगी, नही तो काहे को इतना पढाता-लिखाता, वही ग्यारह वर्ष की उम्र मे विवाह करके पिंड छुडाता। (कुछ ठहरकर) परन्तु, भाई, प्रकाश बहुत शीघ्र छूटा। यह तो डॉक्टर नेस्टफील्ड से सुन चुका था कि वह छूट जायगा, लेकिन इतनी जल्दी छूट जायगा, यह नही जानता था।

धनपाल : (धीरे-धीरे) होता क्या ? पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया, झूठा मुकदमा तक चला दिया, पर नगर भर मे एक गवाह भी उसके विरुद्ध न मिला। विश्वनाथ, शहीदबख्श

उनकी पार्टी मे से भी सबने उसके विरुद्ध गवाही देना अस्वीकृत कर दिया ।

दामोदरदास : किसकी शामत आयी थी कि उसके विरुद्ध गवाही देता । उस दिन की मीटिंग के कारण अपने ही आदमी फँसे, क्यो ?

धनपाल : हाँ, अपने ही छः आदमी, पर यह किसी प्रकार सिद्ध न हो सका कि वे अपने आदमी थे ।

दामोदरदास : कानूनन चाहे सिद्ध न हुआ हो, पर मुँह-मुँह पर बात तो यही है । भाई, मैं तो आरम्भ से ही उस मीटिंग के सम्बन्ध मे वडा नर्वस था । इरीगेशन-स्कीम समाप्त हो गयी । अब उसका विश्वनाथ, शहीदवख्श आदि कोई समर्थन न करेगा ।

धनपाल : यह स्कीम चौपट हुई इतना ही नही, अपना सबका उसके कारण मुँह भी काला हो गया ।

दामोदरदास : तभी तो मैं कहता हूँ, सभी कुछ उल्टा हो रहा है । कुछ करने को जाते हैं और कुछ होता है । अगर प्रकाश बाहर रहा तो देखना अभी और क्या-क्या होता है ।

धनपाल : (सिर हिलाते हुए) इसमे सन्देह नही, इतने थोडे से दिनो मे यह दशा हुई है ।

दामोदरदास : (कुछ सिर ऊँचा कर) केबिनेट मे तो हो, क्यों नही गवर्नर को घुमाते कि सब ठीक हो जाय ।

धनपाल : बहुत कोशिश किया, पर वह पब्लिक उपीनियन से

बहुत डरता है। अब स्पष्ट हो गया कि इस सम्बन्ध मे गवर्नमेंट, जब तक बाहर से कोई दरख्वास्त न हो, हाथ न डालेगी। तुम नेस्टफील्ड से राजा अजयसिह को क्यो नही ठीक कराते।

दामोदरदास: उसका प्रयत्न तो हो रहा है।

धनपाल: जैसा मैंने तुम्हारे जन्म-दिन को कहा था, वे इतनी ही दरख्वास्त दें कि हमारे गाँवो मे वह बलवे की तैयारी कर रहा है, और चार-छ: अच्छे-अच्छे गवाह दे दे, फिर तो मैं उसे सात वर्ष से कम के लिए न भिजवाऊँगा। राजा साहब चाहें तो सैकड़ो गवाह उनके गाँवो मे मिल सकते हैं।

दामोदरदास: मैंने कहा न कि वह तो कर रहा हूँ, भाई, जब से यह सुना था कि इस मुकदमे मे वह छूट जायगा, तभी से इस प्रयत्न में हूँ। दरख्वास्त टाइप तक करा ली है, पर वह खूसट अजयसिह हस्ताक्षर करे, तब तो। नेस्ट-फील्ड को पाँच हज़ार तक देने को कह दिया है।

धनपाल: आज अजयसिह भी तो यहाँ आये हैं।

दामोदरदास: हाँ, और मैंने नेस्टफील्ड को उन्ही के पीछे लगा दिया है।

धनपाल: (बाँयीं ओर देखते हुए कुछ ठहरकर) यह लो, वे दोनो आ ही रहे हैं।

दामोदरदास: (उसी ओर देखकर) तुम थोडा हट जाओ, तुम्हारे सामने कदाचित् खुलकर बाते न हो सकें।

धनपाल: अच्छा, तो मैं अब घर ही जाता हूँ। रात को खबर

भिजवाना कि क्या हुआ।

दामोदरदास : अवश्य।

[धनपाल का दाहिनी ओर प्रस्थान। अजयसिंह और नेस्टफील्ड का बाँयीं ओर से प्रवेश।]

दामोदरदास : (खड़े होते हुए नेस्टफील्ड से) फिर क्या निश्चय हुआ, डॉक्टर साहब ? (तीनों बैठ जाते है।)

नेस्टफ़ील्ड : राजा साहब बहुत कुछ राजी तो हो गये हैं, मिस्टर गुप्ता, पर अभी तक दरख्वास्त पर दस्तखत नही किये हैं।

दामोदरदास : (कुछ रुखाई से, अजयसिंह से) देखिए, राजा साहब, आपसे कोई झूठ वात करने को तो कहा नही जाता है। आप जानते हैं, उसने आपकी इस्टेट मे कितनी गडवडी मचायी है।

अजयसिंह : यह तो मानता हूँ, परन्तु, दामोदरदासजी ''!

दामोदरदास : (और रुखाई से) इसमें, किन्तु-परन्तु की कोई वात नही है, राजा साहब, फिर मेरे लिए भी तो यह आर्थिक प्रश्न है। मेरा भी लाखो रुपया आपके इस्टेट मे फँसा हुआ है।

अजयसिंह : आपका रुपया तो दूध पी रहा है, दामोदरदासजी।

दामोदरदास : दूध क्या, पानी भी नही पी रहा है, राजा साहब। आप निश्चित समय पर ब्याज तक नही देते हैं, मूल की तो वात ही जाने दीजिए।

अजयसिंह : इन वर्षों मे लगातार फसल खराव होने के कारण ऐसा हुआ है।

दामोदरदास : इरीगेशन-स्कीम का कुछ ठीक हो जाता तो फसल कई गुनी बढ जाती, आपकी इस्टेट के मूल्य और आय मे भी बहुत वृद्धि होती, मेरे रुपयो का भी कुछ ठिकाना होता, पर उसका ठीक-ठाक होना तो अभी अकाल के कारण असम्भव दिखता है।

अजयसिंह : कभी न कभी तो नहर बन ही जायगी, दामोदर-दासजी।

दामोदरदास : न जाने कब, आज तो उसके स्थान पर, आपके इस्टेट में दिन-रात इस प्रकार के झगडो से, इस्टेट का मूल्य और आय उलटी घटेगी। मुझे तो अपने रुपयो की रक्षा तक की चिन्ता हो चली है।

अजयसिंह : (डरते-डरते) यह आप कैसी बात करते हैं। आप के रुपयो से इस्टेट का मूल्य कई गुना अधिक है।

दामोदरदास : (अजयसिंह को डरते देख और कड़ाई से) नही, साहब, बातो का प्रश्न नही है। या तो अभी आप उस दरख्वास्त पर हस्ताक्षर करे या कल मुझे नालिश करनी पडेगी, और डॉक्टर साहब दोनो घरो के वकील हैं, लाखो का सवाल है, अत मैं कलकत्ते से किसी दूसरे बैरिस्टर को बुलाऊँगा।

अजयसिंह : (बहुत ही डरकर) अच्छा, कल तक मुझे और सोच लेने दीजिए।

दामोदरदास : (अपनी कड़ाई का प्रभाव पड़ते देख और भी कड़ाई से) नही, राजा साहब, बहुत हो गया। (नेस्ट-

फील्ड से) डॉक्टर साहब, वह दरख़्वास्त है ?

नेस्टफील्ड : (जेब से दरख़्वास्त निकालकर) जी हाँ, यह है।

दामोदरदास : (दरख्वास्त लेकर अपना फ़ाउन्टेन-पेन और दरख्वास्त दोनो अजयसिंह के आगे कर) लीजिए, राजा साहब।

[अजयसिंह मूर्तिवत् बैठा रहता है।]

दामोदरदास : (दोनों चीजों को हटाकर उठते हुए) अच्छी बात है, न कीजिए। आप मेरा स्वभाव जानते हैं। कल डिस्ट्रिक्ट जज की कोर्ट मे नालिश पेश कर दी जायगी। (उठता है।)

नेस्टफील्ड : (दरख़्वास्त दामोदरदास से लेकर) ठहरिए, मिस्टर गुप्ता, राजा साहब जरूर दस्तख़त कर देवेंगे। (अजयसिंह से) राजा साहब, मैं आप दोनो ख़ान्दानो की हमेशा भलाई चाहनेवाला रहा हूँ। हमेशा ही मैंने आपको सर भगवान-दास के घर से मदद दिलवायी है, और भी आप दोनो की हर तरह से ख़िदमत करने की कोशिश की है। उस दिन अगर कन्हैयालाल को न सँभाला जाता और पार्टी का हाल उसके पेपर मे निकल जाता तो, आप सच मानिए कि, गवर्नर शायद आपकी पुश्तैनी टाइटिल तक वापिस माँगने पर उतारू हो जाते। इस मामले का भी आप गवर्नमेंट से कम ताल्लुक न समझिए। मैं पब्लिक प्रॉसीक्यूटर हूँ और मुझे कई भीतरी बाते मालूम रहती हैं। वह प्रकाश अभी सिर्फ इसलिए छूटा है कि इस

मामले में उसे सजा भी होती तो बहुत कम। आप यह न सोचिए कि गवर्नमेंट को गवाह नही मिले। गवर्नमेंट चाहती तो सौ गवाह मिल सकते थे। वह बदजात जो कुछ यहाँ कर रहा है, और यहाँ उसने जितनी भी गड-बडी मचायी है, इसके सबब, आप समझते हैं, सरकार उससे चिढी हुई नही है ? इस तरह आपके दरख़्वास्त देने से, गवर्नमेंट के दिल मे उस दिन की पार्टी का अगर कुछ मलाल होगा तो वह भी निकल जायगा। फिर आप दोनो खान्दानो की दोस्ती ज्यादा चीज़ है, या वह मिस्चीवियस, वेगावाँड छोकरा ? आपके और गवर्नमेंट के ताल्लुकात की वजह से, आपके और सर भगवानदास के घर की दोस्ती के सबब से, और भी सभी बातो को सोच, मैं जो आपका हमेशा से भला चाहनेवाला रहा हूँ, और हमेशा से आपकी ख़िदमत करता रहा हूँ, यही मुनासिब समझता हूँ कि आप इस दरख़्वास्त पर फौरन दस्तख़त कर दे।

[नेस्टफील्ड दरख़्वास्त आगे करता है। अजयसिंह फाउन्टेन-पन लेकर हस्ताक्षर करता है। हस्ताक्षर करते-करते अजयसिंह के नेत्रों से दो बूँद आँसू दरख़्वास्त पर टपक पड़ते हैं, फाउन्टेन-पेन हाथ से छूटकर गिर जाती है। दामोदरदास अजयसिंह की नजर बचा नेस्टफील्ड को देख हँस देता है। परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान · नगर का एक भाग

समय प्रात.काल

[वही मार्ग है जो पहले अक के आठवें दृश्य में था। प्रकाशचन्द्र और कन्हैयालाल का प्रवेश।]

कन्हैयालाल : तो अब आज तक के मेरे सब अपराध क्षमा हुए?

प्रकाशचन्द्र : (मुसकराते हुए) मेरी दृष्टि मे तो आपके कोई अपराध थे ही नही।

कन्हैयालाल : और मन के भ्रम ?

प्रकाशचन्द्र : न मेरे मन मे कोई भ्रम ही थे। आपके पत्र के वहिष्कार का प्रस्ताव भी मैंने सत्य-समाज मे उपस्थित नही किया था। समाज के अन्य एक युवक सदस्य ने उसे उपस्थित किया था। हाँ, जब उसने आपके पत्र के सम्बन्ध मे कुछ बाते वहाँ कही तब मैंने भी अवश्य उसके प्रस्ताव के पक्ष मे मत दिया, क्योकि उस युवक का सारा कथन मुझे सत्य जान पडा।

कन्हैयालाल : आप ठीक कहते है, प्रकाशचन्द्रजी, जो कुछ इन दिनो मे यहाँ हुआ उससे यदि आप लोगो ने मेरे पत्र का वहिष्कार किया तो इसमे भी कोई आश्चर्य की बात नही

है, परन्तु साथ ही आप मेरी कठिनाइयो का भी थोडा अनु-
मान कीजिए। आप अभी जानते नही हैं कि पत्रो के
चलाने मे कितना घाटा होता है।

काशचन्द्र : अच्छा! मै तो समझता था इनसे लाभ होता है।

न्हैयालाल : लाभ का नाम न लीजिए और हानि की बात भी
मत पूछिए। आय के केवल दो मार्ग हैं और व्यय के बीसो।

प्रकाशचन्द्र : यह कैसे ?

कन्हैयालाल : आय होती है पत्र की बिक्री और विज्ञापन से।
विज्ञापन की आय ही मुख्य आय है, क्योकि बिक्री बढने से
कागज आदि सामान्य खर्च भी वढ जाता है। फिर हिन्दी
पत्रो की दशा तो बहुत ही शोचनीय है।

प्रकाशचन्द्र : अच्छा! हिन्दी यहाँ की भाषा होने पर भी ?

कन्हैयालाल : क्या कहूँ, उन्हे अँगरेजी पत्रो के सदृश विज्ञापन
की आय नही। बिक्री, जब तक कोई भारी आन्दोलन न हो
तब तक अधिक नही होती। इन्ही दो-चार धनिको से
पत्र चलता था, मैं करता तो करता क्या ?

प्रकाशचन्द्र : (सिर हिलाते हुए) इसमे सन्देह नही कि आपके
सामने भारी समस्या थी।

कन्हैयालाल : (प्रकाशचन्द्र की सहानुभूति देख कुछ उत्साह से)
फिर, प्रकाशचन्द्रजी, मेरे कुटुम्ब का भार भी तो पत्र पर
ही है। बड़ा भारी कुटुम्ब है। (उँगली पर गिनते हुए) देखिए,
एक बूढी माँ, तीन बेवा बुआ, दो छोटे भाई और उनकी
औरतें, एक के तीन बच्चे और दूसरी के दो, फिर मेरी सात

लडकियाँ, छः लड़के, तीन लडको की वहुएँ, मेरी औरत उसके तीन भाई, दो बहने और मैं स्वय ।

प्रकाशचन्द्र : (आश्चर्य से) अच्छा ! आपको तो कलम से खेती बोनी पडती है ।

कन्हैयालाल : (कुछ शर्माते हुए) क्या कहूँ, फिर कुटुम्ब भी महा-रोगिष्ट । चार-छ खटियाएँ घर मे सदा बिछी ही रहती हैं । दो रोगी क्षय के और एक सग्रहणी का है । हर महीने वैद्य-डाक्टरो का लम्बा बिल चुकाना पडता है ।

प्रकाशचन्द्र : (खेद से) राम, राम, राम ।

कहैन्यालाल : फिर प्रकाशचन्द्रजी, हर वर्ष बच्चा पैदा होता है। भाइयो पर भी ईश्वर की कृपा है । और इस वर्ष वडे लडके के भी बच्चा होनेवाला है ।

प्रकाशचन्द्र: हाँ !

कन्हैयालाल : और फिर प्रकाशचन्द्रजी, भाई, लडके और औरतो के नातेदार सब निकम्मे । उनसे पत्र के बडल बँधवा लीजिए या उन पर टिकट लगवा लीजिए पते तक ठीक नही लिख सकते । कमानेवाला एक मैं और खानेवाले ये सब ।

प्रकाशचन्द्र : (और भी खेद से) सचमुच वडी आपत्ति है ।

कन्हैयालाल : और फिर, प्रकाशचन्द्रजी, छोटे बच्चो को पढाने का खर्च, विवाह और ऐसा कठिन समय । आप स्वय विचार कर सकते हैं, मेरी क्या स्थिति है ।

प्रकाशचन्द्र : (लम्बी साँस लेकर) बडी शोचनीय स्थिति है,

वर्माजी, इसमें सन्देह नही ।

कन्हैयालाल : (आँखों में आँसू भरकर) कुछ पूछिए नही, मेरी स्थिति मै ही जानता हूँ ।

प्रकाशचन्द्र : (सहानुभूतिपूर्वक) वर्माजी, आप दु खित न हो, जो कुछ इस तुच्छ व्यक्ति से आपकी सहायता होगी वह सदैव करने को तैयार रहेगा ।

कन्हैयालाल : (सिर हिलाते हुए) आपका तो बहुत बड़ा सहारा अब हो ही गया, पर, आप बहुत दिन बाहर रह पाये तब न । आपने सभी को तो अप्रसन्न कर डाला है । बिना अपनी रक्षा का कोई प्रबन्ध किये बरंइयो का छत्ता उकसा दिया है, सभी आप पर टूट पड़े हैं, थोडा धीरे-धीरे और ढँग से कार्य होता तो ठीक होता ।

प्रकाशचन्द्र : मैं राजनीतिज्ञ तो हूँ नही वर्माजी, न मेरा इन सब कार्यों में स्वार्थ ही है ।

कन्हैयालाल : परन्तु कार्य के हित की दृष्टि से भी यही आवश्यक था । असहयोग आन्दोलन के समय, मैं जेल में गया था, पर जब मेरे पश्चात् कोई भी जेल न गया तब मैंने भी सत्याग्रह मे जेल जाना उचित न समझा ।

प्रकाशचन्द्र : सत्याग्रह मे यहाँ से कोई जेल नही गया ?

कन्हैयालाल : दो-चार उचक्के यदि चले भी गये तो न जाने के समान ही है । हाँ, उन्हे जेल के फाटक तक पहुँचाने हजारो आदमी गये थे, पर जुलूस और बडी-बडी सभाओ के अतिरिक्त और किसी ने कुछ न किया । इसीलिए तो

मैं कहता हूँ कि कार्य के हित की दृष्टि से आपका जेल के बाहर रहना आवश्यक है और इसके लिए भाषण आदि मे सतर्कता रखना ।

प्रकाशचन्द्र : यह मेरे लिए असम्भव है, वर्माजी । जो बात सत्य होगी उसे मैं तो अवश्य तत्काल कहूँगा और करूँगा, फल जो कुछ भी हो । कहिए, फिर कोई गिरफ्तारी का वारेंट है क्या ?

कन्हैयालाल : (धीरे-धीरे) वारेंट तो कदाचित् अभी तक नही है, पर उडती हुई ख़बर अवश्य सुनी है ।

प्रकाशचन्द्र : कैसी ?

कन्हैयालाल : सुना है, राजा अजयसिंह ने सरकार को एक दरख्वास्त दी है कि आप उनके इस्टेट मे बलवा कराने की तैयारी कर रहे हैं । पुलिस ने इसकी जाँच भी कर ली है । आप जानते हैं, नगर के सदृश वहाँ, आपके विरुद्ध गवाह न मिले हो यह तो हो नही सकता, क्योंकि अभी आपका वहाँ पूरा जोर तो हो नही पाया ।

प्रकाशचन्द्र : (बेपरवाही से) उँह ! मुझे क्या चिन्ता है । जब चाहे तब पकड ले जायँ । मुझे तो ईश्वर पर विश्वास है । मैं तो मानता हूँ कि सत्य को किसी प्रकार की रक्षा की आवश्यकता नही, वह हर परिस्थिति मे स्वय अपना रक्षक है । मेरे जेल मे रखने से भी सत्यता जेल के भीतर बन्द नही रह सकती । यदि यही हो सकता तो अब तक ससार मे सत्य का चिन्ह तक न रह जाता ।

कन्हैयालाल : यह तो आप ठीक कहते हैं और आपको अपनी गिरफ्तारी की चिन्ता भी नहीं है, पर हम लोगो को तो आपकी आवश्यकता है।

प्रकाशचन्द्र : वर्माजी, ईश्वरीय कार्य किसी के लिए नही रुकता। (कुछ ठहरकर) अच्छा, तो अब आज्ञा हो।

कन्हैयालाल : अच्छी बात है, अब तो नित्य ही मिलना होगा।

प्रकाशचन्द्र : अवश्य। (जाने को उद्यत होता है।)

कन्हैयालाल : (प्रकाशचन्द्र को रोकते हुए) देखिए तो, अभी कोई जान न पावे कि मैंने आप से यह वृत्तान्त कहा है।

प्रकाशचन्द्र : (आश्चर्य से) क्यो, सत्य बात छिपाने की क्या आवश्यकता है ?

कन्हैयालाल : (लज्जित हो, चकपकाकर) ह ' ह' ' 'ह ' 'हाँ, यह तो ठीक है, परन्तु क ' क ' 'कार्य थोड़े ढँग से ही होना चाहिए। फिर यह उडती हुई खबर है, कदाचित् ' 'झ ' 'झूठ ही हो।

प्रकाशचन्द्र : तब आपने मुझसे कहा ही क्यो ?

[एक ओर प्रकाशचन्द्र का घृणा से मुसकराते हुए तथा दूसरी ओर कन्हैयालाल का नीचा मुँह किये प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान दामोदरदास के सोने का कमरा

समय रात्रि

[कमरा मन्द नीली बिजली की बत्ती से प्रकाशित है। रुक्मिणी लेटी हुई है। दामोदरदास का प्रवेश।]

दामोदरदास : (पलँग के निकट जाकर धीरे से) डियर।

रुक्मिणी : (जल्दी से उठते हुए) आप फिर यहाँ पधारे आये। माफ कीजिए, मुझे डियर न कहिए।

दामोदरदास : (डरते-डरते) तो मैं जाऊँ कहाँ ? ससार मे मेरे लिए अब बाहर कोई स्थान नही रह गया और घर मे भी नही है ?

रुक्मिणी : उसी थेरिजा के यहाँ जाइए। वही आपको सुख और शान्ति मिलेगी।

दामोदरदास : उसका रहस्य तो समझ लो, डियर, वही तो इतने दिनो से समझाने का प्रयत्न कर रहा हूँ, जब तुम सुनो तब न।

रुक्मिणी : (घृणा से हँसकर) जी हाँ, यह दूसरा जाल बिछाने की कोशिश हो रही है। सारे ससार को हर काम मे धोखा

देना तो आपका स्वभाव हो गया है।

दामोदरदास : ओह ! रुक्मिणी, तुम भी ऐसा कहती हो ?

रुक्मिणी : आपकी वर्तमान परिस्थिति इसी का परिणाम है और भविष्य में यह स्वभाव आपको न जाने कहाँ ले जाकर छोड़ेगा।

दामोदरदास : पर, ···।

रुक्मिणी : माफ कीजिए, मुझे। अब मुझे मालूम हुआ कि मनुष्य का फिसलना शुरू होने के बाद उसके फिसलने का अन्तिम स्थान निश्चित नही हो सकता, क्योंकि वह खुद उस गति को, जो प्रति क्षण बढती ही जाती है रोकने मे असमर्थ हो जाता है।

दामोदरदास : (लम्बी साँस लेकर) डियर, डियर,···।

रुक्मिणी : ओह ! फिर वही, फिर वही। मुझे तो अब इन डियर, आदि शब्दो मे विडम्बना जान पडती है।

दामोदरदास : शब्दो मे विडम्बना ?

रुक्मिणी : नही, नही, भूल गयी। शब्दों का क्या कुसूर है, यह तो हृदय के भाव मे परिवर्तन हो गया है।

दामोदरदास : पर उस परिवर्तन की आवश्यकता ही ··· ।

रुक्मिणी : आवश्यकता ! अरे ! आश्चर्य तो यह है कि इसमे इतना विलब लगा और मैंने बिना इन चर्म-चक्षुओ से देखे आपके चरित्र को न पहचाना। विलायत में और यहाँ, ससार भर में, जो सोशल एन्गेजमेंट के नाम , मुझे छोडे-छोडे आप घूमते-फिरते थे, उनमे भी यही रहस्य होगा।

दामोदरदास : पर तुम उस रहस्य को समझी ही नही।

रुक्मिणी : नही, नही, अब तो समझ गयी, अच्छी तरह समझ गयी, पहले जरूर नही समझती थी। पहले समझती थी, जैसे निष्कपट होकर मैं आपको चाहती हूँ, वैसे ही आप भी, कम से कम, मेरे प्रेम मे निष्कपट होगे। मैं तो अनुमान करती थी कि आपके सारे हृदय को मैंने व्याप्त कर रखा है, पर अनुभव कटु, अत्यन्त कटु हुआ। अब मुझे मालूम हुआ कि उस हृदय की काली चादर मे मेरे लिए भी कोई सफेद कोना खाली नही है।

दामोदरदास : पर, तुम भूल मे हो। देखो,... ।

रुक्मिणी : अब भूल मे हूँ, अब ? नही, हरगिज़ नही, पहले भूल मे थी कि आपसे इस तरह का अध प्रेम किया और जो कुछ आपने कहा सो करती रही। मनोरमा बीबी ही ठीक कहती थी कि इस देश के समाज का कल्याण पश्चिमी सिद्धान्तो से नही हो सकता।

दामोदरदास : ओह ! डियर, ..।

रुक्मिणी . (क्रोध से) मैंने आप से कह दिया कि मुझे डियर न कहिए। यह शब्द मेरे सारे गत जीवन को एक दारुण निराशा के स्वरूप मे लाकर खडा कर देता है। मेरे वर्षो के सिंचित हरे-भरे उद्यान को, आपने जो एक दिन मे ही कांस से भर दिया है, यह शब्द कानो के द्वारा हृदय तक पहुँच, नेत्रो से उसका भयकर रूप दिखला, मुझे कँपा देता है। मेरा हृदय विदीर्ण होने लगता है, फटने

लगता है, मैं हाथ जोड़ती हूँ, मुझे यह न कहिए।

दामोदरदास : (लम्बी साँस लेकर) डियर, डियर, कुछ तो ।

रुक्मिणी : नही मानेंगे, क्या आपकी वजह से मुझे यह घर भी छोड़ना पडेगा ? मुझे अकेली पडी रहने दीजिए, आप जो चाहे, कीजिए, मेरे निकट न आइए । जाइए यहाँ से। अपने कमरे में वैठी-वैठी मैं ईश्वर में मन लगाने का प्रयत्न करूँगी। नही तो विश्वास मानिए, मैं घर ही छोड़ दूँगी। (दामोदरदास को चुप देखकर) आपकी और ज्यादा निन्दा होगी। (हाथ जोड़कर) क्या मेरी इतनी प्रार्थना भी स्वीकृत न होगी ? (दामोदरदास को न उठते देखकर) अच्छी वात है, मैं ही चली जाती हूँ। आपका, मेरे सग मे रहना अव असम्भव है। अव तक मेरा और आपका हृदय अलग हुआ था, पर अब हृदय के वियोग के साथ घर का वियोग भी होता दिखायी देता है। आप जानते हैं कि रुक्मिणी अपने निश्चय की पक्की है, वह अपने सर्वस्व की वाजी लगा, उसे खोकर, परिणाम को भोगने की हिम्मत रखती है।

[रुक्मिणी दामोदरदास को फिर भी जाते न देख, स्वयं वाहर जाने लगती है। यह देख दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए दामोदरदास का प्रस्थान। परदा गिरता है।]

चौथा दृश्य

स्थान . प्रकाशचन्द्र के घर का बाहरी भाग

समय : तीसरा पहर

[प्रकाशचन्द्र का प्रवेश।]

प्रकाशचन्द्र : माँ ! ओ माँ !

[तारा का प्रवेश]

तारा : सवेरे का गया हुआ अब आया। आज कुछ खाया या नही ? लाऊँ खाना।

प्रकाशचन्द्र : तुझे तो दिन-रात खाने की पडी रहती है। अभी-अभी खाकर आ रहा हूँ। खाना तो मैं प्रात काल से तीन बार खा चुका। पर संसार में खाना ही सब कुछ है या और भी कुछ ?

तारा : और कुछ क्यो नही है ? दिन घूमना, रात घूमना, सडक-सडक की धूल छानते फिरना, घर-घर जूतियाँ चटकाते फिरना।

प्रकाशचन्द्र : (मुसकराकर) और ?

तारा : और ? और ले, व्याख्यान देना, बडे-बडे लोगो से लडाई करना, फिर हवालातो और जेलो की सैर करना

और अपने शरीर को खराव करना ।

प्रकाशचन्द्र : और ?

तारा : और भी। अच्छा और ले, वूढ़ी माँ को जीती की जीती जलाते रहना । अव यथेष्ट हुआ या नही ।

प्रकाशचन्द्र : और तो तूने सव ठीक कहा, माँ, पर अन्तिम वात ठीक नही कही कि वूढी माँ को जीते-जी जलाते रहना। आह ! माँ, कैसी वात कहती है ? माँ को जीती की जीती जलाते रहना, यह तूने कैसे कहा, माँ ? तेरा यह पुत्र, अपनी माँ को—ससार मे सवसे अच्छी माँ को, जीती की जीती, ओह ! जीती की जीती जलायगा ? आह ! माँ, क्या कहती है ? कभी-कभी आवेश मे आकर तू मेरे साथ अन्याय कर वैठती है ।

रा : (प्रकाशचन्द्र को गोद में लिटाकर मुख देखते हुए) वेटा, तुझे दोष नही देती । मैं चाहे ससार मे सवसे अच्छी माँ न होऊँ, पर, वेटा, तू ससार में सवसे अच्छा पुत्र अवश्य है । वेटा, जव तेरा इतना आदर होते देखती हूँ, तेरे नाम की जय-जयकार सुनती हूँ, तेरे बड़े-वडे जुलूस देखती हूँ, उस समय दु ख से भग्न हृदय मे भी फिर से हर्ष की हिलोरें उठने लगती हैं । परन्तु ······। (कुछ रुक जाती है ।)

प्रकाशचन्द्र : परन्तु पर अटक क्यो गयी, माँ, कह चल ।

तारा : क्या कहूँ, वेटा ?

प्रकाशचन्द्र : फिर भी, कुछ तो ?

तारा : वेटा, इस आदर, इस जय-जयकार, इस जुलूस के पीछे

जो भयानकता छिपी है, जब उसका स्मरण आता है, जब सोचती हूँ, यह भयानकता मेरे लाल को कही सदा के लिए मेरी गोद से पृथक् न कर दे, उन बादलो के समान जो बरस-बरसकर ससार का तो उपकार करते हैं, पर स्वय नष्ट हो जाते हैं, तुझे स्वय को इस कार्य मे विलीन न कर दे, तब, बेटा, तेरी जीती माँ भी, जीती की जीती, जलने लगती है। इसी से कहती हूँ कि तू जीती की जीती माँ को जलाता है, तू नही जलाता है, तो तेरे कार्य जलाते हैं, बेटा।

प्रकाशचन्द्र : पर, माँ, कर्तव्य का पथ तो, तू ही कहती थी, कि, फूलो का न होकर काँटो का होता है। ससार मे सभी के लिए यह पथ ऐसा ही रहा है। यह पथ तो दान का ही पथ है, ग्रहण का नही।

तारा : हाँ, मैं कहती थी, पर तू उसी पथ का पथिक होगा, यह मैं कहाँ जानती थी ?

प्रकाशचन्द्र : ऐसे काँटे वाले पथ का पथिक होने पर भी मुझे एक विचित्र प्रकार का सुख हुआ है, माँ, और उसका कारण है।

तारा : क्या ?

प्रकाशचन्द्र : मेरा जीवन निरुद्देश नही रह गया। उद्देशमय जीवन मे एक विचित्र प्रकार का सुख होता है, इसका अब मैं अनुभव करने लगा हूँ। फिर मै यह भी जानने लगा हूँ कि कुछ लोग ससार को प्रसन्न करने के लिए कर्तव्य करते हैं।

तारा : और तू ?

प्रकाशचन्द्र : मै अपने को प्रसन्न करने के लिए करता हूँ। मै नही जानता कि, जिसे मै अपना कर्तव्य कहता हूँ, उससे ससार प्रसन्न होता है या नही, मेरे हृदय को उससे अवश्य प्रसन्नता होती है और फिर, माँ,…। (**रुक जाता है और तारा की ओर एकटक देखने लगता है।**)

तारा : फिर क्या ?

प्रकाशचन्द्र : फिर ? फिर, माँ, जब इस कर्तव्य को मै अपने हृदय में प्रतिष्ठित तेरी भव्य मूर्ति को अर्पित करता हूँ तब तो मेरे आनन्द की सीमा नही रह जाती।

तारा : बेटा, बेटा !

प्रकाशचन्द्र : (**माँ की ओर देखते हुए कुछ ठहरकर**) क्यो, माँ, तुझे मेरे इस आदर, इस जय-जयकार, इन जुलूनो से वडा हर्ष होता है ?

तारा : अवश्य होता है, बेटा, तुझे नही होता ?

प्रकाशचन्द्र : (**लम्बी साँस लेकर**) यदि इन सब मे सत्यता होती, उच्च हृदय के सच्चे भावो का समावेश होता, तो अवश्य होता।

तारा : (**आश्चर्य से**) ये सब सच्चे नही हैं ?

प्रकाशचन्द्र : जितने होते हुए तू देखती है, उतने सच्चे नही हैं।

तारा : यह कैसे ?

प्रकाशचन्द्र : कुछ लोग तो, इसमे सन्देह नही कि, मेरा सच्चे हृदय से आदर, हृदय के सच्चे आवेग से जय-जयकार करते हैं, परन्तु उन्ही आदर करनेवालो, उन्ही जय-जय-

कार बोलनेवालो मे अनेक ऐसे कलुषित हृदय के लोग भी है, जो मन मे मुझसे घृणा करते हैं, मन मे मुझसे ईर्षा रखते हैं, मन मे मेरे बढते हुए प्रभाव को देख जलते हैं और मेरा विनाश तक कर डालना चाहते हैं, परन्तु ऊपर से विवश हो उन्हे मेरा आदर करना पडता है, मेरी पराजय चाहने पर भी, उच्च स्वर से मेरा जय-घोष बोलना पडता है।

तारा : अच्छा !

प्रकाशचन्द्र : इनसे तेरा काम न पडने के कारण तुझे इनका अनुभव नही हो सकता, माँ, पर मैं ऐसे लोगो को मुखो से पहचान सकता हूँ। फिर कई ऐसे हैं जो मेरे कार्यों को लेशमात्र नही समझते, परन्तु सबके साथ मिल मेरे आदर और जय-घोष मे सम्मिलित हो जाते हैं।

तारा : और सच्चे कितने होगे, बेटा ?

प्रकाशचन्द्र : बहुत कम, परन्तु, माँ, इस आदर और जय-घोष से चाहे हृदय मे क्षणिक उत्साह भर जाय, चाहे हृदय को क्षणिक आनन्द मिल जाय, पर यथार्थ मे ये सच्चे और स्थायी आनन्द देने की वस्तु ही नही हैं। अब मुझे अनुभव होने लगा है, माँ, कि सच्चा आनन्द बाहर के आदर और जय-घोष से प्राप्त नही होता, उसकी उत्पत्ति तो भीतर से होती है। जब मैं अपने किसी भी कर्तव्य को, सचाई से, निस्वार्थ भाव से, पालन करता हूँ, और उस पालन को, अन्त करण के भीतर प्रतिष्ठित तेरी उदासीन तथा सकरुण प्रतिमा के चरणो मे ...। (चुप

होकर तारा की ओर एकटक देखने लगता है।)

तारा : हाँ, चरणो में क्या ? चुप क्यों हो गया ?

प्रकाशचन्द्र : चरणों में भेंट करता हूँ, माँ, उस समय जिस सच्चे आनन्द की मुझे प्राप्ति होती है, वह वर्णनातीत है। (कुछ ठहरकर) इस आनन्द की प्राप्ति मुझे नगर मे आने के पूर्व कभी नही हुई थी। सबसे पहले इसका कुछ अनुभव राजा अजयसिंह के प्रीति-भोज के भाषण के पश्चात्, थोड़ा-थोड़ा फिर कई बार सत्य समाज की बैठकों आदि में, और सबसे अधिक टाउनहाल की सभा मे, जिस समय लोग भाग रहे थे, उस समय पिटते रहने पर तनिक भी विचलित हुए बिना, खडे रहने के समय और स्वय पिटने के अपराध में गिरफ़्तार होने के समय, हुआ। माँ, यह आनन्द तो दिनोंदिन बढता जा रहा हे।

तारा : और, बेटा, इस आनन्द से माता की शोकमयी प्रतिमा, जिसे तू अपने हृदय मे अकित बताता है, धीरे-धीरे घुल रही है; क्यो ?

प्रकाशचन्द्र : फिर वही बात। आह! माँ, यही तो तू समझती नही। यदि वह अंकित मूर्ति घुल जाय तब तो मेरा हृदय भी इन ऊपरी आदर और जय-घोष करनेवालो के सदृश ही हो जाय, इस सच्चे आनन्द का मुझे अनुभव ही न हो। इस अपूर्व आनन्द का अनुभव ही इसी कारण होता है कि तेरी शोकमयी मूर्ति मेरे हृदय पर अकित है।

तारा : (कुछ ठहरकर) बेटा, जब तू तीन दिन हवालात मे रहा, उस समय तुझे मेरा स्मरण आया था ?

प्रकाशचन्द्र : तेरा स्मरण ? तेरा स्मरण, माँ ? यह पूछने की वात है ? वहाँ तो तेरा इतना अधिक स्मरण आया, जितना इसके पूर्व कभी आया ही न था। मैंने तुझसे एक दिन कहा था न कि जव गाँव मे, सदा मैं तेरे ही पास रहता था, तव मेरे सामने नगर के तेरे वताये हुए दृश्य घूमते थे।

तारा : हाँ, वेटा, कहा था।

प्रकाशचन्द्र : और यह भी कहा था कि नगर मे तुझसे अलग रहने पर कई वार घूमते-घूमते, कई वार मित्र-मडली मे वात करते-करते और कई वार भाषण देते-देते तेरा स्मरण हो आता था।

तारा : हाँ, वेटा, यह भी कहा था।

प्रकाशचन्द्र : अव हवालात का वृत्तान्त सुन, माँ।

तारा : वह भी कह।

प्रकाशचन्द्र : गाँव मे सदा तेरे साथ रहता था, इससे दूसरी वाते स्मरण हो आती थी, नगर मे जव चाहे तव तेरे पास आ सकता था, इससे कभी-कभी ही तेरा स्मरण आता था, परन्तु, माँ, हवालात मे तू मेरे पास न थी, और मैं भी तेरे पास आने के लिए स्वतन्त्र न था, अतः वहाँ तो, आठो पहर और चौसठो घडी, हृदय मे अंकित तेरी मूर्ति के दर्शन करता रहता था। माँ, यथार्थ मे वहाँ तू हृदय के जितनी निकट थी, उतनी आज तक कभी भी नही रही। वहाँ मुझे मालूम हुआ कि वियोग मे प्रेमपात्र

हृदय के कितना सन्निकट रहता है। (कुछ ठहरकर) तेरी वहाँ क्या दशा थी ?

तारा : वह न बताऊँगी।

प्रकाशचन्द्र : इतने दिन से टाल रही है, आज तो मैं सुनूँगा ही। नहीं तो मचल जाऊँगा। (पैर पछाड़ता है)।

तारा : तुझ मे अभी भी कितना बचपन है; (लम्बी साँस लेकर) क्या सुनेगा ही ?

प्रकाशचन्द्र : (पैर पटकते-पटकते) अवश्य, अवश्य सुनूँगा, चाहे कुछ भी हो, सुनूँगा।

तारा : अच्छा सुन, तुझसे ठीक विपरीत।

प्रकाशचन्द्र : अच्छा !

तारा : जिस समय पुलिस यहाँ से तुझे ले चली, उस समय मुझे ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे मेरे शरीर की सारी नसो के, हृदय के और आत्मा के भीतर से कोई वस्तु खीचकर ले जायी जा रही है। तेरे जाने के पश्चात् मैं यही बैठी रही और जब तेरे जुलूस का जय-घोष सुना तब उठी, बेटा।

प्रकाशचन्द्र : (आश्चर्य से) अच्छा ! तो तूने तीन दिन तक कुछ नही खाया ! और सोयी भी नही !

तारा : खाया ! सोयी ! बेटा, खाना-सोना कैसा ? तेरे जाने के पश्चात् मैं जानती ही नही, कहाँ क्या हुआ, कितना समय बीता, जब प्रकाश होता था, तब आँखो को कुछ सफेदी दिख जाती थी और जब अंधकार होता था तब कालिमा। एक बात आश्चर्यजनक अवश्य थी।

प्रकाशचन्द्र : वह क्या ?

तारा : दो स्त्रियो के सदृश कोई वस्तुएँ, मेरे चारो ओर घूमा करती थी, कुछ कहती भी थी, पर वे कौन थी, क्या कहती थी, मैं नही जानती, मेरे भीतर क्या था और बाहर क्या, मुझे ज्ञात न था। तीन दिन पश्चात् तू आया, यह मुझसे तूने कहा।

प्रकाशचन्द्र : (घबडाकर उठते हुए) आह ! माँ, आह ! माँ, यह तो बडा भारी अनर्थ है। अभी तो मैं तीन ही दिन मे आ गया, समझ ले न छूटता, और तीन माह या तीन वर्ष को चला जाता, तो भी तू इसी प्रकार बैठी रहती ?

तारा : न जाने क्या करती, मैं कुछ नहीं कह सकती।

प्रकाशचन्द्र : (कुछ ठहरकर) माँ, वे स्त्रियाँ मनोरमा और सुशीला तो नही थी ?

तारा : यह भी मैं नही जानती।

प्रकाशचन्द्र : (फिर कुछ ठहरकर) क्यो, माँ, मुझे तू अपने भीतर क्यो नही देखती ?

तारा : (कुछ ठहरकर शोकमयी मुसकराहट के साथ) बेटा, जब तू मेरे भीतर था, तब तुझे भीतर देखती थी, जब तुझे बाहर निकाल दिया तब तुझे बाहर देखती हूँ। तू मुझे अब अपने भीतर नही दिखता। तू अपने हृदय का अनुभव कर सकता है, मेरे हृदय का नही।

प्रकाशचन्द्र : कैसे, माँ ?

तारा : कैसे ? सुनेगा ?

प्रकाशचन्द्र : अवश्य ।

तारा : (लम्बी साँस लेकर) जिस दिन से तूने मेरे उदर मे प्रवेश किया, उसी दिन से मेरे बाहरी दु खो का आरम्भ हुआ ।

प्रकाशचन्द्र : अच्छा ! तूने यह सब मुझे कभी नही बताया ।

तारा : आज सुन ले । मैं भी महलो में रहती थी; उत्तमोत्तम पदार्थ खाती और उत्तमोत्तम कपडे पहनती थी, सब छूट गये । परन्तु उस समय अपने भीतर एक दूसरे प्रकार के विलक्षण आनन्द का अनुभव हुआ ।

प्रकाशचन्द्र : वह क्या ?

तारा : अपने भीतर तुझे देखना । अनेक विचार, अनेक कल्पनाएँ, अनेक सकल्प-विकल्प मेरे हृदय मे तरगो के सदृश उठते और विलीन हो जाते थे । उन तरगो पर तेरी काल्पनिक मनोहर मूर्ति नृत्य करती थी । (चुप होकर प्रकाशचन्द्र की ओर देखने लगती है ।)

प्रकाशचन्द्र : अच्छा, आगे ?

तारा : कुछ समय पश्चात् जब तू पेट मे फडकने लगा, तब तेरे साथ मेरे हृदय के भाव भी फडकने लगे, और जब तूने पेट में घूमना आरम्भ किया, तब मुझे जान पडता था कि सारा विश्व मेरे पेट में घूम रहा है ।

प्रकाशचन्द्र : ओह !

तारा : प्रसव की पीडाओ मे मुझे स्वर्ग-सुख का अनुभव हुआ, और जब तू बाहर आया, तब मेरे भीतर का सारा विश्व, तेरे सग ही, बाहर आ गया ।

प्रकाशचन्द्र : तो तब से तू मुझे भीतर न देख सकी ?

तारा : कैसे देखती ? तुझे बाहर निकाल, बाहर देखने लगी, और उस दर्शन मे अपूर्व सुख पाने। तेरे कभी मुसकराते और कभी रोते हुए मुख-कमल मे मेरे ससार का सारा सौन्दर्य छिपा था और तेरे हिलते हुए हाथ-पैरो मे ससार की सारी हलचले। जब तू दूध पीता, तब मुझे अनुभव होता कि मैं अपने शरीर से सारे ससार का भरण-पोषण कर रही हूँ और तुझे कपडा पहनाने में अनुभव होता कि सारे विश्व को वस्त्र दे रही हूँ। जब तू खाने योग्य हुआ और जब से मैंने तुझे भोजन कराना आरम्भ किया, तब से मुझे अपने मे अन्नपूर्णा देवी का अश प्रतीत होने लगा। जब तू पढने योग्य हुआ और मैंने ही तुझे शिक्षा दी, तब से मुझे भासता है कि सरस्वती का भी मुझ मे समावेश है। पर, बेटा, इस महान् सुख मे एक दुख भी था और वह बहुत बडा।

प्रकाशचन्द्र : कैसा दुख, माँ ?

तारा : जब कभी तू बीमार होता, तब तेरी छोटी-सी बीमारी मे भी मुझे यही ज्ञात होता कि कही मेरे सोने का ससार विनष्ट न हो जाय। उस समय के मेरे दुख का वर्णन ही नही हो सकता।

[तारा चुप हो जाती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

प्रकाशचन्द्र : तो इस प्रकार मेरे जन्म के पश्चात् से ही तू मुझे बाहर ही देखती है ?

तारा : हाँ, बेटा । फिर मेरा जगत्, मेरा संसार, मेरा विश्व, बहुत विस्तीर्ण नहीं है, संकुचित, अत्यन्त संकुचित है और वह तू है, बेटा, तू । जब तक तू मेरे भीतर था, तब तक मेरा संसार मेरे भीतर था, और जब से तू बाहर आया तब से मेरा संसार मेरे बाहर आ गया । तुझे बाहर कर, बाईस वर्ष तक अपने संसार को बाहर देख, जैसा तू है, वैसा तुझे बना, अब मैं अपने भीतर तुझे कैसे देखूँ, यह तू ही बता, बेटा ? तू ही मुझे समझा दे ।

प्रकाशचन्द्र : (अत्यन्त गम्भीर होकर) माँ, माँ !

तारा : (प्रकाशचन्द्र को देखते हुए) कह, बेटा !

प्रकाशचन्द्र : क्या कहूँ, कुछ समझ मे नही आता । मैं अपने भीतर तुझे देखता हूँ, बाहर उतनी अच्छी प्रकार नही देख सकता । तू अपने बाहर मुझे देख सकती है, अपने भीतर देख ही नही सकती । पर, माँ, (घबड़ाकर) तेरी स्थिति तो बड़ी ही भयानक है ।

तारा : है तो, बेटा, तभी तो तुझ से कहा कि हम लोग गाँव लौट चले ।

प्रकाशचन्द्र : (दृढता से) यह तो कल्पना तक करने की बात नही है, माँ । संसार को बुरा समझ, अपने ऊपर आनेवाली आपत्तियो के भय से भागना और अपने कर्तव्य का पालन न करना, यह तो कायरों का काम है । यह तो तेरी शिक्षा के विरुद्ध है, ठीक विरुद्ध है, माँ । (कुछ ठहरकर) अच्छा तो तू मुझे बाहर ही देख सकती है, क्यो ?

तारा : हाँ, बेटा, भीतर तो नही देख सकती ।

प्रकाशचन्द्र: अच्छा, माँ, अब तक तूने मुझे शिक्षा दी है, आज मैं तुझे दूँगा ।

तारा : (शोकमयी मुसकराहट से) अच्छी बात है, मैं तुझे गुरु मान लेती हूँ ।

प्रकाशचन्द्र : (मुसकराकर) तू तो मेरी हँसी करती है । (कुछ ठहरकर धीरे-धीरे) देख, माँ, यदि किसी समय मैं तुझ से कुछ समय के लिए…। (रुक जाता है ।)

तारा : हाँ, कहता जा, यदि किसी समय तू मुझ से कुछ समय के लिए विलग कर दिया जाय, तो मैं क्या करूँ ?

प्रकाशचन्द्र: (कुछ साहस से) मेरा कार्य तूने सरल कर दिया, माँ । तू कहती है न कि तू मेरे सदृश अपने भीतर मुझे नही देख सकती, बाहर देख सकती है ?

तारा : कितनी बार 'हाँ' कहूँ ।

प्रकाशचन्द्र : तो बस, ऐसे अवसर पर अपने बाह्य जगत् की सारी वस्तुओं मे---(जल्दी-जल्दी) आकाश मे स्थित उषा की द्युति, दिन के प्रकाश, सध्या की प्रभा, रात्रि के अधकार, सूर्य, चन्द्र, तारागण, मेघ, दामिनी, इन्द्र-धनुष में, पृथ्वी पर स्थित पर्वतो, नदियो, वनो, उपवनो, वृक्षो, पल्लवो, पुष्पों, फलो, गृहो, मार्गों मे, नभचरो, जलचरो, थलचरो मे, अपने स्वय के गृह और उसकी वस्तुओ मे, तू अपने प्रकाश, प्यारे प्रकाश को देखना । माँ, माँ, यदि तू प्रयत्न करेगी तो तुझे तेरा प्रकाश सर्वत्र दृष्टिगोचर होगा, अवश्य

होगा, और देख, मेरे लिए चिन्तित न होना, माँ। माँ, तेरी महान् शोकमयी, अलौकिक सौन्दर्यमयी, अद्भुत वल-मयी, अपूर्व शक्तिमयी, जो प्रतिमा मेरे हृदय मे अकित है, वह, मुझे कारागृह की अँधेरी कोठरियो मे, लोहे की तौक और हथकडी, वेडियो में, छोटी से छोटी और बडी से बड़ी आपत्ति मे, सव स्थानो मे, हर स्थल पर, प्रत्येक अवसर, हर परिस्थिति मे सुखी रखेगी, माँ, सुखी रखेगी, यहाँ तक कि कर्तव्य-पालन मे मुझे शूली पर भी चढना पड़ा तो भी हँसते-हँसते चढा देगी।

तारा : (प्रकाशचन्द्र को गोद में लिटा, उसका मुँह देखते हुए) वेटा, दृढप्रतिज्ञ बेटा, धर्मनिष्ठ वेटा, कर्मनिष्ठ बेटा, मेरी कोख को सफल करनेवाला वेटा, मेरे प्रकाश, ससार के प्रकाश, मेरे चन्द्र। (आँसू टपकते हैं।)

प्रकाशचन्द्र : (तारा के मुँह की ओर एकटक देखते हुए) माँ, ससार मे सवसे अच्छी माँ, मेरा आनन्द, मेरा वल, मेरी शक्ति माँ, माँ, माँ ! कैसा अलौकिक सौन्दर्य है, कैसा अद्भुत सौन्दर्य है! (आँसू भर आते हैं। कुछ देर को सन्नाटा छा जाता है।)

प्रकाशचन्द्र : (उठते हुए) माँ, तेरे लिए अव एक भयानक सवाद है।

तारा : (शान्ति से) क्या, वेटा ?

प्रकाशचन्द्र : राजा अजयसिंह ने नेस्टफील्ड वैरिस्टर के द्वारा सरकार को दरख्वास्त दी है कि मैं उनकी इस्टेट में

बलवा कराने का उद्योग कर रहा हूँ। पुलिस ने इसकी जाँच कर ली है और उसे गवाह भी मिल गये हैं।

तारा : (क्रोध से) किसने दरख्वास्त दी है, किसने दरख्वास्त दी है ?

प्रकाशचन्द्र : अजयसिंह ने, माँ।

तारा : (कुछ ठहरकर) बेटा, मैं अभी आती हूँ और तुझे आज्ञा देती हूँ कि जब तक मैं न आऊँ, तब तक तू घर के भीतर जाकर बैठ।

प्रकाशचन्द्र : (आश्चर्य से) कहाँ जाती है, माँ ?

तारा : यह न बताऊँगी।

प्रकाशचन्द्र (जल्दी-जल्दी) पर तू कोई ऐसी बात तो न करेगी, जिससे मैं कर्तव्य-पथ से भ्रष्ट होऊँ, या किया जाऊँ।

तारा : वचन देती हूँ, कदापि नही। (जाना चाहती है।)

प्रकाशचन्द्र : (रोककर) सुन, माँ तू आज्ञा देकर जा रही है कि मैं घर के बाहर न जाऊँ; तेरी आज्ञा मेरे लिए ससार मे सबसे अधिक पवित्र वस्तु है; पर मान ले, पुलिस मुझे आकर गिरफ्तार कर ले जाये ?

तारा : (दृढता से) यह दूसरी बात है। ऐसी परिस्थिति मे अब मैं तुझ से जेल मे आकर मिलूँगी। (जाती है। चादर लेकर आती है और फिर जाती है।)

प्रकाशचन्द्र : (खड़े होकर) माँ, माँ, दुखी माँ, संसार मे सबसे अच्छी माँ।

[दूसरी ओर प्रस्थान। परदा उठता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान नगर का एक मार्ग

समय · तीसरा पहर

[वही मार्ग है जो पहले अंक के आठवें दृश्य में था। मनोरमा और सुशीला का प्रवेश।]

मनोरमा : मुझे सचमुच बड़ा खेद है, बहन, कि मेरे कारण तुम्हारा भी यह वर्ष गया।

सुशीला : यदि तुम मुझे इतना स्वार्थी समझती हो तब तो मैं तुम्हारी मैत्री के योग्य ही न थी। यह कभी सम्भव था कि तुम दिन भर मारी-मारी उनकी गिरफ्तारी का पता लगाती घूमो और मैं कॉलेज हॉल मे बैठकर परीक्षा दूँ। यदि जाती भी तो एक प्रश्न तक का उत्तर न दे सकती।

मनोरमा : तो आज इतना तो पता लग गया कि उनका गिरफ्तार होना अब निश्चित है।

सुशीला : हाँ, यह तो जान ही पड़ता है।

मनोरमा : बहन, वे जेल जायँगे। (लम्बी साँस लेकर) सर्वप्रथम तो यही मेरी समझ मे नही आता कि एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के जेल भेजने का क्या अधिकार है। फिर यदि समाज की यह एक अनिवार्य बुराई मान ली जाय, और चोरो, डाकुओ, व्यभिचारियो आदि के सुधार एवं समाज की रक्षा ऐसे व्यक्तियो को जेल भेजे बिना न हो सकती हो, तो भी प्रकाशचन्द्रजी के सदृश व्यक्तियो

के लिए भी जेल ! और इस प्रकार के मनुष्यों को जेल भिजवाएँ मेरे भाई साहब और राजा साहब के सदृश व्यक्ति ! मुझे तो आश्चर्य होता है, बहन, कि मेरे भाई और राजा साहब आदि के सदृश डाकुओं से भी बड़े डाकू, चोरों से भी बड़े चोर और व्यभिचारियों से भी बड़े व्यभिचारी, समाज में आनन्द से रहते हैं, प्रतिष्ठा के साथ रहते हैं और प्रकाशचन्द्र के सदृश व्यक्ति जेल भेजे जाते हैं।

सुशीला : ठीक कहती हो, बहन, पर न जाने कैसे संसार में सदा से यही होता आ रहा है।

मनोरमा : तभी तो समाज दुखी है और आश्चर्य की बात यह है कि मेरे भाई साहब-सदृश व्यक्ति भी दानी, त्यागी और दानी, त्यागी ही नहीं, दूसरों के दुःख से दुखी रहने की डींग मारते हैं। दुखी रहने का दिखावा भी कदाचित् दूसरों पर रोब रखने में सहायक होता है।

सुशीला : और अब तुम्हें भी इन्हीं लोगों के कारण दुःख मिलेगा। उनके बिना तुम्हारा समय कैसे निकलेगा ?

मनोरमा : (फिर दीर्घ निश्वास छोड़कर) उनके स्वरूप के ध्यान, उनके नाम के जप और उनके अधूरे कार्यों को पूर्ण करके। सौभाग्य की बात है, सुशीला, कि मेरी उनसे एकता, केवल प्रेम में ही न होकर, कर्तव्य-क्षेत्र में भी है। उनके वियोग में यद्यपि जीवन भार-स्वरूप हो जायगा, आँखें दर्शनामृत पान करने के लिए और कान

वाक्यामृत श्रवण करने के लिए तरसेंगे, पर इन्हे वश मे रख मैं उनके कार्यों को पूर्ण करूँगी। मैं जानती हूँ, बहन, उससे भी मुझे एक अद्भुत आनन्द की प्राप्ति होगी।

सुशीला : अब मेरी समझ मे आया कि विवेकी और अविवेकी के प्रेम में क्या अन्तर है, स्वार्थ और निस्वार्थ भाव के प्रेम मे क्या अन्तर है। जिस जनता मे इस प्रेम का कुछ अपवाद-सा फैल गया है, वह जनता अब जानेगी कि सच्चा प्रेम किसे कहते हैं। वह दिन दूर नही है, बहन, जब तुम्हारे और उनके विशुद्ध प्रेम की गाथा गाँव-गाँव और घर-घर मे गायी जायगी।

मनोरमा : इसकी मुझे चिन्ता नही है, सुशीला। मैं तो इतना जानती हूँ कि इस आत्मा, इस हृदय, इस शरीर के अधिष्ठाता-देवता, प्रेम-देवता, सर्वस्व, वे ही हैं, और कोई नही। उन्ही के संग, उन्ही की वार्ता से मुझे आनन्द मिलता है और किसी वस्तु से नही। जब वे न होवेंगे तब उनके उस स्वरूप को, जो माता की गोद मे उषा की गोद से उदय होते हुए बालसूर्य के सदृश सुन्दर और सौम्य, एवं कर्तव्य-पथ मे मध्याह्न के सूर्य के सदृश प्रखर रहता है, ध्यान कर, उनके उस शब्द को, जो वार्तालाप के समय कोमल और मधुर, एव भाषण के समय मेघ की गर्जना के समान गम्भीर रहता है, स्मरण कर, आत्मा को शांति दूँगी और सत्य-समाज के अधूरे कार्यो को पूर्ण करूँगी।

सुशीला : तुम्हे धन्य है, मनोरमा।

मनोरमा : इसमे कोई विशेषता तो नही है, सुशीला, ससार सुख चाहता है। बाल्यावस्था मे बालक को खिलौने से खेलने मे सुख मिलता है, युवावस्था में गृहस्थो को वैवाहिक प्रेम से, ऋषि-मुनियो को तपस्या से और भक्तो को भक्ति से, मैं वही कहती हूँ और वही करूँगी, जिससे मुझे सुख मिलेगा, जनता की निन्दा-स्तुति की मुझे चिन्ता नही है।

सुशीला : पर, बहन, उनके हृदय में तुम्हारे प्रति कैसे भाव हैं ?

मनोरमा : मैं नही जानती। हाँ, इतना तो मैंने अवश्य देखा कि उन्होंने कभी मेरी ओर दृष्टि भरकर देखा भी नही, न प्रेम की कोई बात ही कही; परन्तु मुझे इसकी भी चिन्ता नही है। मैं वह प्रेमिका भी नही कि प्रेम-पात्र की ओर से परिवर्तन में प्रेम की आकांक्षा करूँ और प्रति-सहयोग न मिलने पर प्रेम न कर सकूँ। हाँ, मेरे कार्य पर उनका अत्यधिक विश्वास है। दूसरे, उस दिन टाउनहाल मे उन पर पडनेवाले प्रहारो को जब मैंने सहा, तब वे बहुत विचलित हुए और मुझे धन्यवाद भी कई बार दिये। बहन, उन प्रहारो के सहने से जितना आनन्द मुझे मिला उतना आज तक कभी न मिला था

सुशीला : परन्तु तुमने आज तक अपना हृदय खोलकर उनके सम्मुख रखा भी तो नही।

मनोरमा : न यह भविष्य मे कभी करूँगी।

सुशीला : तो यह कुसुम-कलिका क्या बिना खिले ही मुरझा

जायगी ? प्रेम तो विकसित करने का कार्य करता है। क्या यह प्रेम अपने स्वभाव के विरुद्ध कार्य करेगा ?

मनोरमा : नही, बहन, तुम तो प्रेम का एक पहलू बता रही हो, उसका दूसरा पहलू भी है, और वह है बलिदान। कहीं प्रेम सुख का साम्राज्य स्थापित करता है और कही बलिदान की आहुति माँगता हैं। प्रथम विकास है और दूसरा विसर्जन। विकास से विसर्जन कई गुना श्रेष्ठ और आनन्ददायक हे। फिर बलिदान के समय तो हृदय पर प्रेम का स्वरूप उस तरु के समान हो जाता है जो खण्डहर पर हरा-भरा रहता है।

सुशीला : सचमुच ही तुम धन्य हो, मनोरमा।

मनोरमा : मुझे अपनी विशेष चिन्ता नही है, सुशीला, चिन्ता है उनकी वृद्धा माता की। स्मरण नही है, उन तीन दिनों में, जब तक वे हवालात मे रहे, न तो वे सोईं, न उन्होंने कुछ खाया, न हम लोगो को पहचाना, न हमारी बात समझी और न हम से कुछ कहा ही। अधिकतर हम लोग उन्ही के पास रही, पर कोई फल न हुआ। सुशीला; उन तीन दिनो मे तुमने उनमे एक बात देखी ?

सुशीला : क्या, बहन ?

मनोरमा : माता का अद्भुत शोक। उनके शोक मे साधारण करुणा न थी, परन्तु करुणा के सग ही एक विचित्र प्रकार का बल था। नारी को अबला कहा जाता है, परन्तु कदाचित् माता के लिए, और विशेषकर पुत्र के लिए शोकित माता के लिए, अबला शब्द का उपयोग नही

किया जा सकता ।

सुशीला : हाँ, वहन, उनके शोक मे करुणा के संग ही एक विचित्र प्रकार का वल अवश्य था ।

मनोरमा : मुझे भय है कि प्रकाशचन्द्र के इस वार के वियोग मे उनका यह विचित्र वल ही उनके प्राण हरण न कर ले । सुशीला, शोक मे जिनके प्राण जाते हैं, उनके प्राणो को, शोक की करुणा नही, पर शोक का यह विचित्र वल ही हरण करता है । फिर माता के शोक मे इस वल की कितनी वडी मात्रा रहती है यह हम लोगो ने देखा ही है।

सुशीला : परन्तु कई वार यह भी होता है कि जिस प्रकार अत्यधिक सुख वहुत काल तक नही ठहरता उसी प्रकार अत्यधिक दु.ख भी । जो कुछ हो, हमें उनकी सेवा मे कोई वात न उठा रखनी होगी ।

मनोरमा : (कुछ ठहरकर) अच्छा, वहन, एक वार अजयसिंह के पास जाऊँ, उनके सम्वन्ध मे कहकर देखूँ कि क्या होता है ।

सुशीला : क्या होगा, मुझे तो कोई आशा नही है ।

मनोरमा : (कुछ सोचते हुए) पर प्रयत्न करके देखने मे क्या हानि है ?

सुशीला : हाँ, प्रयत्न करने मे कोई हानि नही । मै भी चलूँ ।

मनोरमा : (फिर कुछ सोचते हुए) नही, अकेली ही जाऊँगी ।

सुशीला . वहाँ के निर्णय की सूचना तो दोगी ही ?

मनोरमा : अवश्य, इसमे क्या सन्देह है ।

[दोनो का प्रस्थान । परदा उठता है ।]

छठवाँ दृश्य

स्थान : राजा अजयसिंह का बैठकखाना

समय : तीसरा पहर

[अजयसिंह और कल्याणी बैठे हैं ।]

कल्याणी : जितना मैं आपके हृदय को शान्ति पहुँचाने का उद्योग करती हूँ, उतना ही मैं देखती हूँ, दिनोदिन आपकी उद्विग्नता बढती ही जाती है, महाराज ।

अजयसिंह : मैंने तो कई दफा तुमसे कहा, कल्याणी, कि मुझे शान्ति और सुख मिल ही नही सकते । मेरा शोक, ऐसा शोक है जिसे वही मनुष्य जान सकता है जो शनैः शनैः अपनी सम्पत्ति खोता है, उसे बचाने की अच्छे और बुरे सभी रास्तों से कोशिश करता है, पर इतने पर भी उन प्रयत्नो मे असफल होता है। तुम जानती हो, गत अनेक वर्षो मे मैंने पद-पद पर अपने दुर्भाग्य से युद्ध किया है, लेकिन विजय सदा उसी की हुई है । वह शोक, जो इस प्रकार के पराजयो से धीरे-धीरे बढता है, एकाएक होने वाले शोक से कही ज्यादा कष्टदायक है । एकाएक होने वाली बर्बादी और धीरे-धीरे होने वाली बर्बादी मे शायद

उतना ही अन्तर है जितना फेफडो की ही दो बीमारियो, निमोनियाँ और थाइसेस मे। एकाएक होनेवाली बर्बादी के कारण कष्टमय बडी बात कदाचित् सहनीय है, परन्तु धीरे-धीरे होनेवाली बर्बादी के कारण छोटी-छोटी कष्ट-मय बाते नही। किसी उच्च स्थान से शनैः शनैः मेरा पतन हो रहा है, इस विचार से ज्यादा कष्ट देनेवाला शायद और कोई विचार नही है।

कल्याणी : और, महाराज, यदि हम लोग इस सब बचे हुए ऐश्वर्य को छोडकर वानप्रस्थ ले ले तो ?

अजयसिंह : (हाथ मलते हुए) कल्याणी, कैसी बात कहती हो। मैं बिना ऐश्वर्य के जिन्दा रहने की कल्पना ही नहीं कर सकता।

कल्याणी : परन्तु इस ऐश्वर्य से आपको किस सुख की प्राप्ति हो रही है ?

अजयसिंह : कल्याणी, तुम समझती नही हो, मैंने उस दिन भी तुमसे कहा था, आज भी कहता हूँ।

कल्याणी : कैसे, महाराज ?

अजयसिंह : मैं तुम्हे समझा नही सकता, खुद समझ सकता हूँ। मेरे भीतर न जाने कौनसी चीज, कौनसी शक्ति, इस सारे ऐश्वर्य को कायम रख सकने के लिए मेरे शरीर, मेरे हाथो, मेरे सारे अवयवो से सब प्रकार के कार्य, कल के सदृश करा रही है।

कल्याणी : परन्तु, महाराज, अपना वृद्ध-काल उपस्थित हुआ

है, सन्तान भी नही है, फिर यह सब किस लिए ?

[अजयसिंह चुप रहता है ।]

कल्याणी : महाराज ।

अजयसिंह : कल्याणी ।

कल्याणी : यह मनुष्य-जन्म बार-बार नही मिलता ।

अजयसिंह : जानता हूँ ।

कल्याणी : यह ऐश्वर्य साथ नही चलेगा ।

अजयसिंह : जानता हूँ ।

कल्याणी : यो ही दुःख ही दुःख में आप अपना सारा जीवन निरर्थक व्यतीत कर रहे हैं ।

अजयसिंह : जानता हूँ ।

कल्याणी : मेरा जीवन निरर्थक व्यतीत करा रहे हैं ।

अजयसिंह : जानता हूँ ।

कल्याणी : अभी तक कई ऐसे कार्य कर रहे हैं, जो नही करने चाहिएँ ।

अजयसिंह : जानता हूँ ।

कल्याणी : फिर ?

अजयसिंह : फिर क्या ? मैं शक्तिहीन हूँ । इस बन्धन को तोड़ सकने को, इस जाल को काट डालने को, मुझमे हिम्मत नही है । देखो कल्याणी,··· ।

[रमा का प्रवेश ।]

रमा : (कल्याणी से) जिस प्रकाशचन्द्र के यहाँ आपने मुझे एक बार भेजा था, उसकी माता तारा आयी है । कहती है,

रानी साहबा से अभी मिलना चाहती हूँ ।

अजयसिंह : (आश्चर्य से खड़े हो, हाथ मलते हुए) आह ! तारा आयी है ! तारा आयी है !

कल्याणी : (रमा से) अच्छा, मै अभी आयी । (रमा का प्रस्थान । अजयसिंह से) इसमे भी उद्विग्नता, महाराज ? आप ही ने तो एक वार प्रकाशचन्द्र को बुलाने का प्रयत्न किया था । उसकी माँ स्वय आयी है और यह सुनकर भी आप उद्विग्न हो रहे हैं । अच्छा मै अभी आयी ।

[कल्याणी का प्रस्थान ।]

अजयसिंह : (घूमते और हाथ मलते हुए) आह ! कल्याणी, तू नही समझती, मै कहता हूँ नही समझती ।

[परदा गिरता है ।]

सातवाँ दृश्य

स्थान : रानी कल्याणी के कमरे की दालान

समय : तीसरा पहर

कल्याणी : (बाँयीं ओर से प्रवेश कर) रमा ! रमा ! उन्हे ले आ।

[दाहिनी ओर से रमा और तारा का प्रवेश। रमा तारा को छोड़कर जाती है।]

तारा : (चादर मुख पर से हटाते और कल्याणी का मुख देखते हुए) बहन, मुझे पहचाना ?

कल्याणी : (ध्यान से तारा का मुख देखकर आश्चर्य से) इन्दु दीदी से तुम्हारा मुख मिलता-जुलता है। (कुछ ठहरकर उसी प्रकार तारा का मुख देखते हुए) मिलता-जुलता क्या वैसा ही मुख है। (फिर कुछ ठहरकर उसी प्रकार तारा का मुख देखते हुए) अरे, वैसा-ही मुख क्या, तुम वही हो, वही हो। आँखे धोखा तो नही देती, कान धोखा तो नही खाते, इन्दु दीदी, इन्दु दीदी !

तारा : हाँ, कल्याणी, अभागिनी इन्दु ही है।

कल्याणी : (इन्दु के पैर छूकर) दीदी, इतनी वृद्ध हो गयी ?

तारा : बहन, दु:ख जो न कर दे सब थोड़ा है। अवस्था तो

पचपन वर्ष की है। अच्छा, अधिक समय नहीं है।

कल्याणी : इसका क्या अर्थ है ? अब तुम कहाँ जा सकती हो, दीदी ?

तारा : व्यर्थ की बातें न कर, बहन। जिस काम को आयी हूँ, वह सुन। मेरे पुत्र प्रकाश को जानती है ?

कल्याणी : कौन इस नगर में है, जो उनका नाम नहीं जानता ? परन्तु अब तुम्हारा पुत्र प्रकाश क्यों ? राजा साहब का राजकुमार प्रकाश।

तारा : फिर वही पागलपन। सुन, काम की बात होने दे। राजकुमार प्रकाश नहीं, व्यभिचारिणी इन्दु का निर्धन और अनाथ पुत्र प्रकाश। दुखिया तारा के टूटे हुए हृदय का सहारा प्रकाश। अंधी तारा के नेत्रों का तारा प्रकाश। सुन, उस पर नयी आपत्ति आनेवाली है और उस आपत्ति के कारण हैं तेरे पति-देव, राजा साहब।

कल्याणी : (आश्चर्य से) राजा साहब ! राजा साहब !

तारा : हाँ, राजा साहब ! उनके इस्टेट में प्रकाश का सत्य-समाज कार्य कर रहा है। उन्होंने-बैरिस्टर नेस्टफील्ड के द्वारा सरकार को झूठी दरख्वास्त दी है कि वहाँ प्रकाश बलवा कराने का उद्योग करा रहा है। पुलिस ने उनकी जाँच भी कर ली है। गवाह भी ले लिये हैं।

कल्याणी : (सिर पकड़कर बैठकर) ओह ! यह अत्याचार ! यह अनर्थ ! वे तो कहते थे कि प्रकाश की ओर उनका हृदय आपसे आप स्नेहवश खिंचा जाता है।

तारा : (रूखी हँसी हँसकर) उनका हृदय! उनके हृदय है भी ?

कल्याणी :(उठती हुई) मैं अभी नेस्टफील्ड को बुलवाती हूँ और दरख्वास्त वापस करवाती हूँ। (जोर से) रमा! रमा!

[रमा का प्रवेश।]

कल्याणी : (रमा) इसी समय डॉक्टर नेस्टफील्ड के यहाँ मोटर भिजवा, और कहला, अत्यन्त आवश्यक कार्य है, वे तत्काल आवे।

रमा : बहुत अच्छा, रानी साहबा। (जाती है।)

कल्याणी : (तारा से) अच्छा, दीदी, चलो, अब भीतरी चलो। यह सब तो बहुत शीघ्र ठीक हो जायगा। राजा साहब अब बहुत कुछ बदल गये हैं। जो थोडे-बहुत दोष उनमे रह गये हैं वे तुम्हे और प्रकाश को पाकर निकल जायँगे।

तारा : (रूखी हँसी हँसकर) फिर वही पागलपन आरम्भ हुआ। कल्याणी, अभी भी तू बडी भावुक है। जैसा मैंने अट्ठारह वर्ष की अवस्था मे छोडा था, वैसा का वैसा स्वभाव जान पड़ता है।

कल्याणी : ये सब बातें फिर होगी। तुम चलो तो......!

तारा : पागल कही की। अच्छा सुन, प्रकाश को तेरी गोद मे छोडकर जाती हूँ।

कल्याणी : यह कभी हो सकता है। (इन्दु का हाथ पकड़ती है।)

तारा : (चोली में से कटार निकालकर) इसका यह उत्तर है, बहन, यदि तू विवश करेगी तो बाईस वर्षों मे जो न किया वह यही तेरे सम्मुख कर लूँगी। यह कटार मेरे

दुखी कलेजे को क्षण भर मे पार कर देगी।

[कल्याणी हक्की-बक्की-सी होकर एकटक तारा की ओर देखती है।]

तारा : (जल्दी-जल्दी अत्यन्त भावपूर्ण स्वर में) व्यभिचार का अभियोग, वहन, झूठे व्यभिचार का अभियोग ! पतिव्रता पत्नी पर, गर्भवती पत्नी पर, व्यभिचार का अभियोग ! हिन्दू-स्त्री के लिए इहलोक और परलोक दोनो की ही दृष्टि से पातिव्रत से अधिक मूल्यवान और कोई वस्तु नही है और इस समाज मे पति का स्त्री को व्यभिचारिणी कह देना, उसका व्यभिचारिणी होना सिद्ध कर देता है। मैंने उनके लिए क्या नही किया, ऐसे पति के लिए भी सव कुछ किया। सन्तान के लिए उनका दूसरा विवाह कराया। तुझे छोटी वहन के सदृश रखा। अनेक शिक्षाएँ दी। उन्हे मदिरा तक पिलायी। वेश्याओ का सग तक किया। कल्याणी, मुझे उस रात्रि का स्मरण है, जव प्रकाश को पेट मे लिये मैं इस महल से वाहर की गयी थी। यदि प्रकाश पेट मे न होता तो क्या तू फिर आज इन्दु का मुख देखती ? उसी दिन इस अभागिनी इन्दु ने ससार छोड दिया होता, पर नही, प्रकाश के कारण जीवित रहना पडा। मुझे उन दिनो का स्मरण है, जव मेरा मुख देखकर कोई पहचान न ले कि यह वही व्यभि-चारिणी इन्दु है, मैं मुख छिपाये-छिपाये नाम वदलकर, दर-दर, गाँव-गाँव और जगल-जगल प्रकाश का बोझ

उदर मे लादे घूमती-फिरती थी। हृदय को हलका करने के लिए दिन को रो तक न सकती, यह सोच कि कोई रोते देख सन्देह न कर ले। जब रात को टाट पर सोती, रात की निस्तब्धता मे हृदय रोये बिना न मानता, और रोते-रोते वह मोटा टाट भी भीग जाता, तब निकटवर्ती जनो से यह कहती कि मुझे पसीने का रोग है। प्रकाश के जन्म के पश्चात् राजकुमार प्रकाश जिस प्रकार अनाथ-वत पाला गया, बडा हुआ वह सब मुझे स्मरण है। जो राजकुमार प्रकाश खस की टट्टियो में रहता, वही ग्रीष्म की भयानक लू मे झुलसता रहता था। वर्षा में झोपड़े के स्थान-स्थान पर चूने के कारण, मैं उसे गोद मे ले, अनेक राते जागते-जागते झोपडे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम-घूम कर बिताती थी। हेमन्त के कँपकपानेवाले जाडे मे, जब कभी वह बीमार पड़ता, तब मुझे रोते हुए प्रकाश को ले, यथेष्ट वस्त्र न रहने के कारण, रुई से ही उसे ढाँक, झोपडे भर मे इधर का उधर नाचना पडता था। जो राजकुमार प्रकाश अच्छे से अच्छे महलों मे रहता, अच्छे से अच्छा भोजन करता, अच्छे से अच्छे वस्त्र पहनता, मोटरो पर बैठता, बीसो नौकरो के साथ रहता, वही प्रकाश जिस प्रकार घास के झोपडे मे रहा, जिस प्रकार रूखे-सूखे टुकड़े खाकर पला, जिस प्रकार चिथडे पहनकर बड़ा हुआ और जिस प्रकार धूप और वर्षा मे पैदल, अकेला मारा-मारा घूमा, वह सब मेरे सामने है,

कल्याणी। जो राजकुमार बडे से बडे विद्यालय मे पढता, उसकी जिस प्रकार की शिक्षा हुई, वह भी मैं भूल नही सकती, बहन। व्यभिचारिणी के बालक की और क्या दशा हो सकती थी, रानी ? आज बाईस वर्ष इसी प्रकार बीत गये ! बाईस वर्ष ! बाईस वर्ष तक अपने व्यभिचार का मैंने प्रकाश के नाम पर पूजन किया है और आज उसी प्रकाश का पिता उस निर्दोष प्रकाश को जेल भिजवा रहा है ! तू, बहन, मुझे अब महलो मे रोकना चाहती है। पागल हो गयी है, पागल हो गयी है ?

[तारा का शीघ्रता से प्रस्थान। कल्याणी कुछ क्षण निस्तब्ध खड़ी रहकर, फिर जाती है। परदा उठता है।]

आठवाँ दृश्य

स्थान . राजा अजयसिंह की बैठक

समय तीसरा पहर

[अजयसिंह टहल रहा है। कल्याणी का प्रवेश ।]

कल्याणी : (भर्राये हुए स्वर में) यह मैं क्या सुनकर आयी हूँ, महाराज ?

अजयसिंह : (जल्दी-जल्दी) यही न कि मैंने प्रकाशचन्द्र को गिरफ्तार करने के लिए सरकार को दरख्वास्त दी है ?

कल्याणी : (आश्चर्य से) और यह कोई आश्चर्य तथा खेद की बात नही है ?

अजयसिंह : (जल्दी से कल्याणी के पास आकर) इस्टेट को बचाने के लिए यह आवश्यक था, नितान्त आवश्यक। सुना, समझी, या (चिल्लाकर) अब भी नही समझी ?

कल्याणी : (लम्बी साँस लेकर) महाराज, महाराज ।

[अजयसिंह चुप रहकर हाथ मलते हुए इधर-उधर टहलता है ।]

कल्याणी : और आपने यह मुझसे भी नही कहा ?

अजयसिंह : (टहलते हुए ही) इस्टेट के प्रबन्ध की सब बातें

स्त्रियों से कहने की जरूरत नही है।

कल्याणी : इसीलिए कदाचित् जो पत्र आपने रुक्मिणी के नाम क्षमा-याचना का लिखकर दिया था, उसकी सूचना भी मुझे नही दी गयी ?

अजयसिंह : (आश्चर्य से, खड़े रहकर) अच्छा यह हाल भी तुम्हे मालूम हो गया ?

कल्याणी : उसी दिन दोपहर को रुक्मिणी आकर मुझे वह पत्र बता गयी थी और जो मन मे आया कह गयी थी। मैने आपको इसलिए नही कहा कि आपकी चिन्ता की सूची क्यो बढायी जाय।

अजयसिंह : (बेपरवाही से) हाँ, इस चिट्ठी का वृत्तान्त भी तुम्हें न कहने का सबब इस्टेट ही है। (फिर टहलता है।)

कल्याणी : यदि आरम्भ से ही इस्टेट का इतना ध्यान रखा गया होता तो यह स्थिति ही काहे को होती ?

अजयसिंह : (टहलते हुए, लम्बी साँस लेकर) उसी का तो प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।

कल्याणी : आप जानते हैं कि प्रकाश कौन है ?

अजयसिंह (उत्सुकता से कल्याणी के निकट आकर) कौन है, कल्याणी ?

कल्याणी आपका पुत्र।

अजयसिंह : (सिर पकड़कर चिल्लाकर) सच ?

कल्याणी : हाँ, आपका सन्देह ही सच निकला, महाराज। प्रकाश इन्दु का पुत्र ही है। इन्दु ही अभी आयी थी, उन्ही ने अपना

नाम तारा बदल लिया है और दु ख के कारण ही उनकी अवस्था इतनी अधिक दिखती है।

अजयसिंह : (सोफा पर गिरते हुए) और राजकुमार प्रकाशचन्द्र उसके पिता की दरख्वास्त पर ही गिरफ्तार हो गया, यही सूचना देकर इन्दु चली भी गयी, क्यो ?

कल्याणी : नही ।

अजयसिंह : (उत्सुकता से उठकर) अच्छा अभी प्रकाशचन्द्र गिरफ्तार नही हुआ ?

कल्याणी : नही, इन्दु कहती थी उसके गिरफ्तार होने की चर्चा है ।

अजयसिंह : (जल्दी से चिल्लाकर) तब तो कुशल है, अब भी कुशल है। मेरे कपडे, मोटर, मैं अभी नेस्टफील्ड के यहाँ जाता हूँ ।

कल्याणी : थोड़ा धैर्य रखिए, महाराज। मैंने उनको लाने के लिए मोटर भेजी है, वे आते ही होगे ।

अजयसिंह : (जल्दी से इधर-उधर घूमते हुए) कल्याणी, कल्याणी।

[रमा का प्रवेश ।]

रमा : सर भगवानदासजी की पुत्री मनोरमा आयी हैं और श्रीमान् तथा रानी साहबा से अभी मिलना चाहती हैं ।

कल्याणी : इस समय ? (कुछ सोचकर) अच्छा, उन्हे यही भेज दो ।

रमा का प्रस्थान और मनोरमा का प्रवेश ।]

मनोरमा : राजा साहब और रानी साहबा का अभिवादन

करती हूँ ।

कल्याणी : कहो, मनोरमा, आज कैसे कष्ट किया ?

मनोरमा : अपने घर के लोगो के पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए, रानी साहबा ।

कल्याणी : कैसा प्रायश्चित्त, मनोरमा ?

मनोरमा : कदाचित् आप नही जानती कि मेरे भाई साहब के कहने से राजा साहब ने प्रकाशचन्द्र के विरुद्ध सरकार को एक दरख्वास्त दी है ।

कल्याणी : मुझे सारा वृत्तान्त अभी विदित हुआ है, मनोरमा ।

मनोरमा : उसी के लिए मैं राजा साहब की और आपकी सेवा मे उपस्थित हुई हूँ । रानी साहबा, मैं प्रकाशचन्द्र के सत्य-समाज की एक सदस्या हूँ ।

कल्याणी : यह मैं जानती हूँ ।

मनोरमा : इतना ही नही, मैं उन्हे इतना चाहती हूँ, जितना ससार मे किसी वस्तु को नही । मैं उनके प्रेम को छिपाना नही चाहती, अपने ही अन्त करण मे, कम से कम इस समय, नही रखना चाहती । यदि ससार की किसी भी पवित्र वस्तु को प्रकट करना पाप नही है, तो उस प्रेम को प्रकट करना भी पाप नही । गगा की धारा से यदि पृथ्वी पवित्र हुई है, हिमालय के उच्च शिखरो से यदि इस ससार का मस्तक ऊँचा हुआ है, तो विशुद्ध प्रेम की धारा गगा से भी अधिक पृथ्वी को पवित्र कर सकती है, विशुद्ध प्रेम के उच्च विचार ससार के मस्तक को हिमालय से भी अधिक

उन्नत कर सकते हैं। ससार हमारे प्रेम को चाहे कैसी भी दृष्टि से देखे, परन्तु, मैं कह सकती हूँ, दावे के साथ कह सकती हूँ, सूर्य और चन्द्र को, समुद्र और अग्नि को, स्वयं भगवान् को साक्षी देकर कह सकती हूँ कि हमारा प्रेम शुद्ध, नितान्त शुद्ध है, पवित्र, अत्यन्त पवित्र है, गगा से अधिक पवित्र है, हिमालय से अधिक उच्च है। उसमे लालसा नही है, वासना नही है, वह निष्काम है, ओत-प्रोत प्रेम है; बस, प्रेम, भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, प्रेम है, बस प्रेम ! उसी प्रेम के नाम पर आपसे और राजा साहब से एक भिक्षा माँगने आयी हूँ, केवल एक, आप उस दरख्वास्त को लौटा ले।

अजयसिह : (घूमते हुए) कल्याणी, कल्याणी, मेरा सिर चक्कर खा रहा है।

कल्याणी : (मनोरमा से) वही हो रहा है, मनोरमा।

[रमा का प्रवेश]

रमा : डॉक्टर नेस्टफील्ड आ गये हैं।

कल्याणी : उन्हे यही भेज दो।

[रमा जाती है। नेस्टफील्ड का प्रवेश।]

अजयसिह : (आगे बढ़कर जल्दी से) बैरिस्टर साहब, प्रकाशचन्द्र के सम्बन्ध मे मैंने जो दरख्वास्त दी है, उसे मैं, चाहे मेरा सर्वस्व क्यों न चला जाय, लौटा लेना चाहता हूँ।

नेस्टफ़ील्ड : (सिर सिलाते हुए) यह तो अब नही हो सकता, राजा साहब।

अजयसिंह : (घबड़ाकर बहुत जल्दी से) क्यो ? मैने दरख्वास्त दी है, मैं लौटाना चाहता हूँ।

नेस्टफील्ड : ऐसे मामले मे सरकार कानूनन मुद्दई हो जाती है और अब तो मामला बहुत बढ गया है, जाँच हो चुकी, गवाह दर्ज़ हो गये, वारेन्ट निकल गया और कदाचित् वह गिरफ्तार भी हो गया होगा।

[नेपथ्य में 'प्रकाशचन्द्र की जय', 'युवक-केशरी प्रकाशचन्द्र की जय' इत्यादि शब्द होते है।]

नेस्टफील्ड : (खिड़की से बाहर की ओर देखकर) यह देखिए, यह देखिए, आपके महल के नीचे से ही पुलिस उसे गिरफ्तार करके लिये जा रही है। शहर के बहुत से लुच्चे उसके साथ जा रहे हैं। राजा साहब, मैं आपका भला चाहनेवाला हूँ। यकीन रखिए, आप किसी तरह नही फँसेगे, बिल्कुल नही फँसेंगे।

अजयसिंह : (अत्यन्त आतुरता से) आह ! बैरिस्टर साहब, आह ! बैरिस्टर साहब, आप नही जानते, आप नही जानते कि क्या मामला है। प्रकाश मेरा लडका है।

[मूर्च्छित होकर सोफा पर गिर पड़ता है।]

मनोरमा : आह ! रानी साहबा, आह ! रानी साहबा, यह सब क्या है ?

[गिरने लगती है। कल्याणी सँभालती है। नेस्टफ़ील्ड स्तम्भित-सा होकर सबकी ओर देखता है।]

यवनिका

उपसंहार